वार्षिक रु. २५०, मूल्य रु. ३०

ISSN 2582-0656

9 772582 065005

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)
वर्ष ६४ अंक ७ जुलाई २०२६

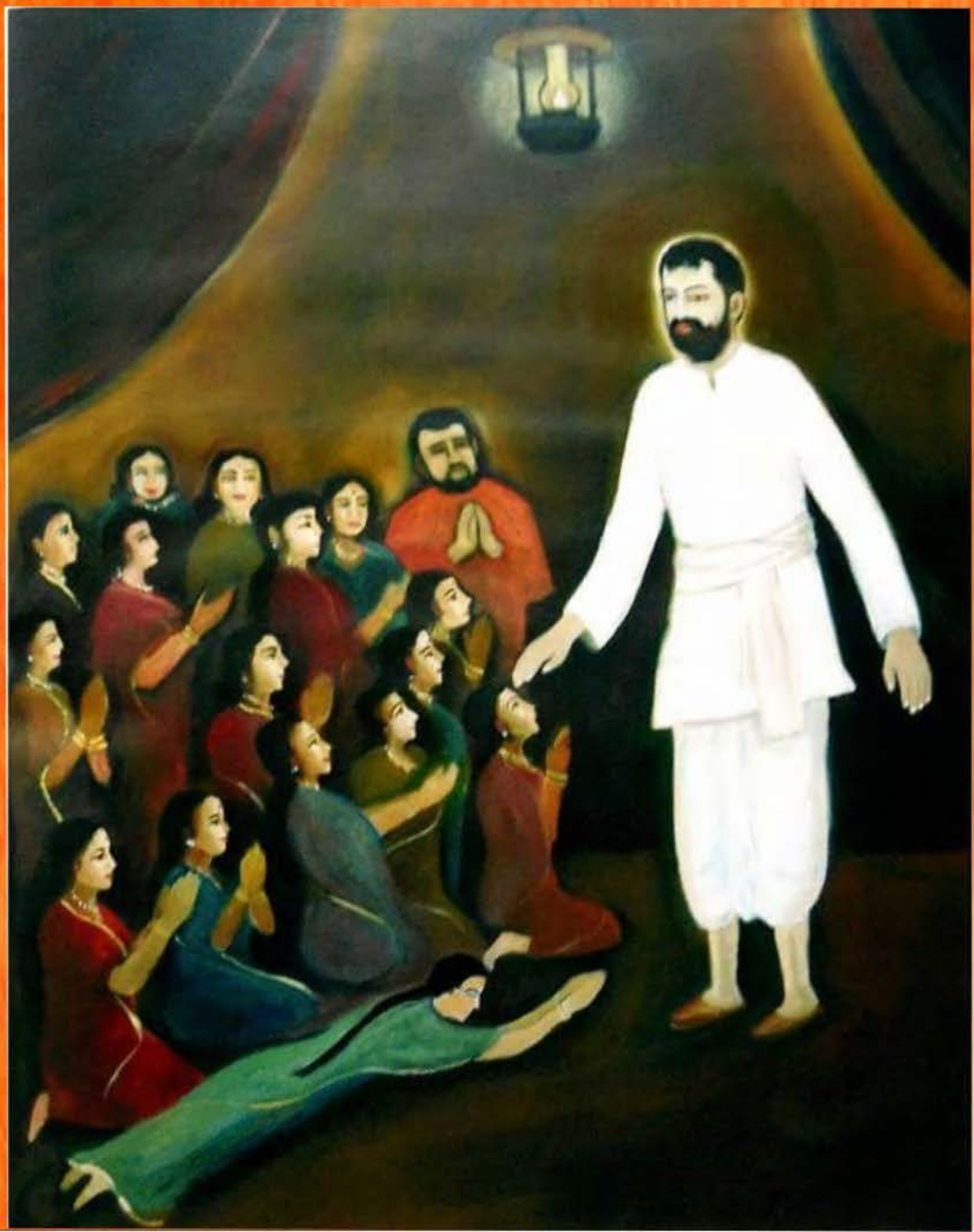

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६४

अंक ७

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

आषाढ़, सम्वत् २०८३

जुलाई, २०२६

अनुक्रमणिका

* गुरु का प्रयोजन : रामकृष्ण परमहंस देव २९४
* भगवान जगन्नाथ और भगवत्पाद शंकर (उत्कर्ष चौबे) २९७
* गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान ३००
* व्रज में श्रीमाँ सारदा (स्वामी ओजोमयानन्द) ३०६
* (बच्चों का आंगन) छोटा जादूगर (श्रीमती गीतांजलि मुरारी) ३१०
* भगवान के नाम-जप का विज्ञान (स्वामी त्रिभुवनदास जी महाराज) ३१२
* (युवा प्रांगण) अनुशासन और संयम से सामर्थ्य – संकट पर विजय की कथा (स्वामी गुणदानन्द) ३१७
* मलूकदास जी की जीव-जगत-अभिव्यक्ति (डॉ. कविता चौधरी) ३१९
* मधुकरी में मिला वेदान्त (स्वामी शशांकानन्द) ३२३
* नन्हीं स्कूबा डाइवर – थारागई आराधना (श्रीमती मिताली सिंह) ३२५
* (भजन एवं कविता) महाप्रभु जगन्नाथ (सदाराम सिन्हा, 'स्नेही') ३१५
* गुरुदेव! खेवनहार हो (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी'), * रामकृष्ण प्रभु तुम्हें प्रणाम (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), युगावतार रामकृष्णदेव के प्रति (डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी) ३१६,
* त्रिमूर्ति वन्दना (रामकुमार गौड़) ३२६

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) २९३
पुरखों की थाती २९३
सम्पादकीय २९५
रामगीता ३०३
श्रीरामकृष्ण-गीता ३२२
गीतातत्त्व-चिन्तन ३२७
साधुओं के पावन प्रसंग ३३०
समाचार और सूचनाएँ ३३४

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए
एक प्रति ३०/-	२५०/-	१२५०/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	७० यू.एस. डॉलर	३५० यू.एस. डॉलर
संस्थाओं के लिए	४००/-	२०००/-

भारत में रजिस्टर्ड पार्सल का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ४५/- देय होगा ।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर जगद्गुरु अहैतुक कृपासिन्धु श्रीरामकृष्ण को भक्तों पर कृपा करते हुए दर्शाया गया है।

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्त्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ६३ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्त्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **– व्यवस्थापक**

जुलाई माह के जयन्ती और त्यौहार

२९ गुरुपूर्णिमा
११,२५ एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री रामराज प्रसाद और श्रीमती उषा प्रसाद की स्मृति में श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद, उ.प्र.	२०,००१/-
श्रीमती कुसुमलता गुप्ता, जोधपुर (राजस्थान)	२,१००/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक ज्योति
पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । – स्वामी विवेकानन्द

- क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?
- क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए ! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए । आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं । आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ 1. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है ।

✍ 2. एक पुस्तकालय हेतु **मात्र 1500/-** रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में **5 वर्षों तक 'विवेक-ज्योति'** प्रेषित की जायेगी ।

✍ 3. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे । दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा । यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है ।

- आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो । आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं । आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस.एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें ।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, IFSC CODE : CBIN0280804
पता – व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 098271 97535, 0771-2225269, 4036959
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर 1963 ई. में आरम्भ की गई थी । तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है । यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें । आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. 2000/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा । रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-1961, धारा-80जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है ।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

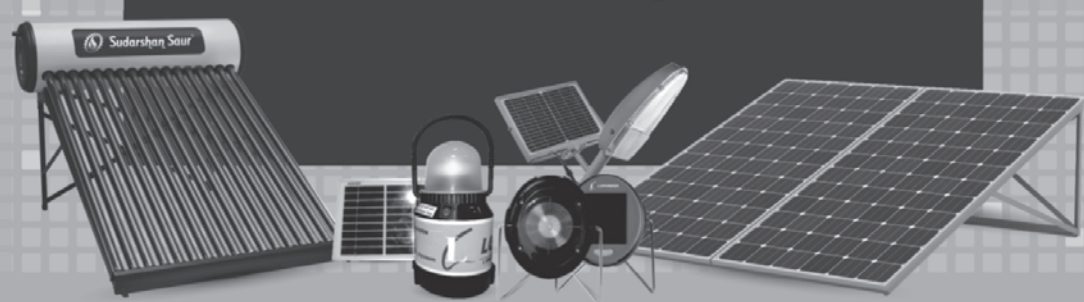

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६४ जुलाई २०२६ अंक ७

गुरुस्तोत्रम्

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते
साक्षात् तत्त्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान्।
यत्साक्षात्करणाद् भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ।।

– जिनका बहि:प्रकाश सत्यवस्तु का अवलम्बन करके ही होता है, तथापि तत्प्रकाश्य वस्तु मिथ्या सदृश प्रतिभास होती है, जो आश्रितों को 'तत्त्वमसि' – तुम वही हो – इस वेदवाक्य द्वारा साक्षात् भाव से ज्ञान-दान करते हैं, जिनके साक्षात्कार के फल से संसार-सागर में पुनरागमन नहीं होगा, उन गुरुरूपधारी दक्षिणामूर्ति को मैं नमस्कार करता हूँ।

पुरखों की थाती

भैषज्यमेतद्-दु:खस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि विवर्धते ।।९०५।।

– दु:ख की दवा यह है कि उसका चिन्तन ही न किया जाये, क्योंकि वह चिन्तन करने से खर्च होने के स्थान पर क्रमश: बढ़ता ही जाता है।

(महाभारत ११.२.१७)

पुस्तकेषु च नाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ।।९०६।।

– जो व्यक्ति पुस्तकों से अध्ययन नहीं करता, जो व्यक्ति आचार्य के सान्निध्य में रहकर शिक्षा ग्रहण नहीं करता, वह सभा के मध्य में बैठा हुआ हंसों के बीच बगुले के समान अशोभनीय दिखता है।

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितं ।
मूढै: पाषाणखण्डेषु रत्नं संज्ञा विधीयते ।।९०७।।

– पृथ्वी पर ये तीन ही रत्न हैं – जल, अन्न तथा सुन्दर उक्तियाँ। मूर्ख लोग पत्थर के टुकड़ों को रत्न का नाम दिया करते हैं।

गुरु का प्रयोजन : रामकृष्ण परमहंस देव

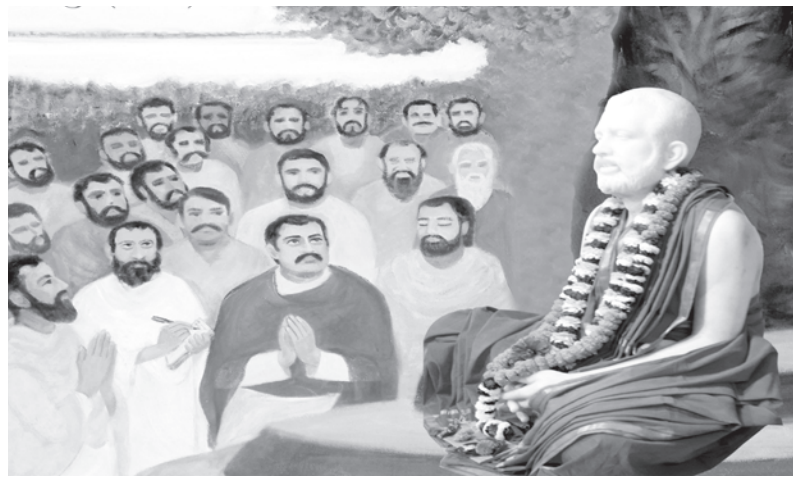

जिन-जिन लोगों से कोई शिक्षा प्राप्त होती हो, उन सभी को गुरु न कहकर एक निर्दिष्ट व्यक्ति को गुरु कहने की क्या अवश्यकता है? किसी अनजान जगह जाना हो, तो जो रास्ता जानता है, ऐसे किसी एक व्यक्ति के निर्देशानुसार ही जाना चाहिए। अनेक लोगों से रास्ता पूछते रहने पर गड़बड़ हो जाती है। वैसे ही, ईश्वर के निकट जाना हो, तो एक अनुभवी गुरु के निर्देशानुसार चलना चाहिए। इसीलिए एक गुरु का प्रयोजन है।

यदि तुम्हारे भीतर ईश्वर के प्रति ठीक-ठीक अनुराग हो, उन्हें जानने की स्पृहा उत्पन्न हो, तो अवश्य ही वे तुम्हें सद्‌गुरु से मिला देंगे। साधक को गुरु के लिये चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

ठीक-ठीक आन्तरिकता के साथ व्याकुल प्राणों से यदि कोई उन्हें पुकार सके, तो उसके लिये गुरु की आवश्यकता नहीं होती; परन्तु साधारणतया ऐसी व्याकुलता नहीं दिखाई देती, इसीलिए गुरु की आवश्यकता है। गुरु एक ही होते हैं, परन्तु उपगुरु अनेक हो सकते हैं। जिस किसी से कुछ शिक्षा प्राप्त हो वही उपगुरु है। अवधूत के इस प्रकार चौबीस उपगुरु थे।

वैद्य की तरह आचार्य भी तीन प्रकार के होते हैं – उत्तम, मध्यम और अधम। जो वैद्य आकर, केवल रोगी की नाड़ी देख, दवा बताकर 'यह दवा लेना जी' कहकर चला जाता है, रोगी ने दवा ली या नहीं, इसकी कोई खबर नहीं लेता, वह अधम वैद्य है। इसी तरह कुछ आचार्य केवल उपदेश दे जाते हैं, शिष्य उनका पालन करता है या नहीं, इसकी वे खबर नहीं रखते। दूसरी श्रेणी के वैद्य रोगी को केवल दवा लेने के लिए कहकर नहीं चले जाते, परन्तु यदि रोगी दवा नहीं लेना चाहता हो, तो उसे दवा लेने के लिये तरह-तरह से समझाते-बुझाते हैं। ये मध्यम श्रेणी के वैद्य हुए। इसी तरह जो आचार्य शिष्यों के हित के लिये उन्हें बार-बार प्रेम से समझाते हैं, जिससे वे उपदेशों की धारणा कर सकें और तदनुसार चल सकें, वे मध्यम श्रेणी के आचार्य हैं। अन्तिम श्रेणी के और उत्तम वैद्य वे हैं, जो यदि रोगी मीठी बातों से न माने तो बल का भी प्रयोग करते हैं। जरूरत पड़ने पर रोगी की छाती पर घुटना रखकर जबरदस्ती दवा पिला देते हैं। उसी प्रकार उत्तम श्रेणी के आचार्य शिष्य को ईश्वर के पथ पर लाने के लिए, आवश्यक हो, तो बल तक का प्रयोग करते हैं।

जो स्वयं शतरंज खेलते हैं, वे बहुत समय नहीं समझ पाते है कि कौन-सी चाल ठीक रहेगी, परन्तु जो तटस्थ रहकर खेल देखते रहते हैं, वे खेलने वालों की चाल से अच्छी चाल बता सकते हैं। संसारी लोग सोचते हैं कि हम बड़े बुद्धिमान हैं, परन्तु वे धन-मान, विषय-सुख आदि में आसक्त रहते हैं। वे स्वयं खेल में डूबे रहते हैं, ठीक चाल नहीं समझ पाते। परन्तु संसार-त्यागी साधु-महात्मा विषयों से अनासक्त होते हैं। वे संसारियों से अधिक बुद्धिमान होते हैं। वे स्वयं नहीं खेलते, इसलिए अच्छी चाल बता सकते हैं। इसीलिए धर्म-जीवन यापन करना हो, तो जो साधु-महात्मा ईश्वर का ध्यान चिन्तन करते हैं, जिन्होंने उन्हें प्राप्त कर लिया है, उन्हीं की बातों पर विश्वास रखकर चलना चाहिए। यदि तुम्हें मामले-मुकदमें की सलाह चाहिए, तो तुम वकील की ही सलाह लोगे न कि किसी ऐरे-गैरे की !

सम्पादकीय

भगवान कहाँ-कहाँ रहते हैं

(गतांक से आगे)

अब तक मुनि वाल्मीकि ने भगवान श्रीराम को यह बताया कि जो आपकी कथा सुनता है, जो आपके विमल यश का गुणगान करता है, जो आपकी पूजा करता है, आपको भोग लगाकर आपके प्रसाद के रूप में उसे ग्रहण करता है, आपके प्रसादी वस्त्रों को ही पहनता है, आपका, देव, गुरु और ब्राह्मणों को प्रणाम करता है, आपके ही तीर्थों में जो जाता है और केवल आप पर विश्वास कर आपके ही आश्रय में रहता है, आप वहाँ अनुज और सीता सहित निवास कीजिये। अब थोड़ी-सी अधिक गहराई में जाते हुये, अधिक समीप जाते हुये ऋषि कहते हैं –

मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा।
पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा।।
तरपन होम करहिं बिधि नाना।
बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना।।
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी।
सकल भायँ सेवहिं सनमानी।। २/१२८/६-८
सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ।।
२/१२९/०

– जो लोग नित्य आपके रामनाम रूपी मन्त्रराज का जप करते हैं और सपरिवार, परिजन सहित आपकी पूजा करते हैं, जो विविध प्रकार से तर्पण, होम करते हैं तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत दान देते हैं तथा जो लोग गुरुदेव को आपसे भी अधिक बड़ा जानकर सर्वभाव से सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं। इन सब कर्मों को करके सबका एकमात्र यही फल माँगते हैं कि श्रीराम के चरणों में हमारी रति हो, प्रीति हो, उन लोगों के मन-मन्दिरों में सीताजी और रघुकुल को आनन्दित करनेवाले आप दोनों निवास कीजिये।

काम कोह मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया।
तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया।। २/१२९/१,२

– जिनमें काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह नहीं है, जिनमें लोभ-क्षोभ नहीं है, जिनमें राग-द्वेष नहीं है और जिनमें कपट, दम्भ और माया नहीं है, हे रघुराज ! आप उनके हृदय में निवास कीजिये।

सब के प्रिय सबके हितकारी।
दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी।।
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी।
जागत सोअत सरन तुम्हारी।।
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।। २/१२९/३-५

– जिनकी आपको छोड़कर दूसरी कोई गति नहीं है, दूसरा कोई आश्रय नहीं है, हे श्रीरामजी ! आप उनके मन में निवास कीजिये।

जननी सम जानहिं परनारी।
धनु पराव विष तें विष भारी।।
जे हरषहिं पर संपति देखी।
दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी।।

जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे।
तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे।। २/१२९/६-८

– जो परायी स्त्री को जन्मदात्री माता के समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विष से भी भारी विष है, जो दूसरों की सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरों की विपत्ति देखकर विशेष रूप से दुखी होते हैं तथा हे रामजी ! जिन्हें आप प्राणों के समान प्रिय हैं, उनके मन आपके रहने योग्य शुभ भवन हैं।

स्वामी सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात।।
२/१३०/०

– हे तात ! जिनके स्वामी, सखा, पिता-माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मन-मन्दिर में सीताजी सहित आप दोनों भाई निवास कीजिये।

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं।
बिप्र धेनु हित संकट सहहीं।।
नीति निपुन जिन्ह कई जग लीका।
घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका।। २/१३०/१,२

– जो अवगुणों का त्याग कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं, बिप्र और धेनु के लिय संकट सहते हैं, नीति की निपुणता में जिनकी जगत में मर्यादा है, उनका सुन्दर मन आपका घर है, आप वहाँ निवास कीजिये।

गुन तुम्हार समुझई निज दोसा।
जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा।।
राम भगत प्रिय लागहीं जेही।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही।। २/१३०/३,४

– जो अपने गुणों को आपका समझता है और अवगुणों को अपना समझता है, जिसे सब प्रकार से आपका ही भरोसा है और जिसे राम-भक्त प्रिय लगते हैं, उसके हृदय में आप सीतासहित निवास कीजिये।

गुण सभी भगवान के हैं और दोष सभी मेरे है, ऐसी मनोभावना इष्ट के प्रति अनन्य समर्पण से आती है। स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा था, ''यदि मैंने अपने सम्पूर्ण जीवन में एक भी सत्य वाक्य कहा है, तो वह उन्हीं (श्रीरामकृष्ण) का है, परन्तु यदि मैंने ऐसे वाक्य कहे हों, जो असत्य, भ्रामक या मानव के लिये हितकर न हों, तो वे सब मेरे ही वाक्य हैं और उनका पूरा उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है।'' आगे ऋषि कहते हैं –

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई।
प्रिय परिवार सदन सुखदाई।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई।
तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई।। २/१३०/५,६

– जाति-पाँति, धन-धर्म, सम्मान, प्रिय परिवार और सुखदायक भवन, इन सबको त्याग कर जो केवल आपको ही हृदय में धारण किये रहता है, हे रघुनाथजी ! आप उसके हृदय में रहिये।

सरगु नरकु अपबरगु समाना।
जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।।
करम बचन मन राउर चेरा।
राम करहु तेहि कें उर डेरा।। २/१३०/७,८

– स्वर्ग-नरक और मोक्ष जिसकी दृष्टि में समान हैं, क्योंकि वह जहाँ-तहाँ, सर्वत्र केवल धनुष-बाण धारण किये हुये आपको ही देखता है और जो कर्म से, वचन से और मन से आपका दास है, हे रामजी ! आप उसके हृदय में निवास कीजिये।

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु।।
एहि बिधि मुनिबर भवन दिखाये।
बचन सप्रेम राम मन भाये।। २/१३१/१

– जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिये और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, आप उसके मन में निरन्तर निवास कीजिये। वह आपका अपना गृह है। इस प्रकार मुनि वाल्मीकि जी ने भगवान के रहने का मानव-हृदय में स्थान बताया।

अत: भगवान का सर्वत्र दर्शन कीजिये, क्योंकि उपनिषद के 'ईशावास्यमिदं सर्वं' से लेकर 'रामचरितमानस की सीयाराममय सब जग जानी', आदि पंक्तियाँ ईश्वर की व्यापकता का गान करती हैं, किन्तु भगवान का सबसे बड़ा मन्दिर मानव का हृदय है, वहीं उनका सर्वाधिक प्रकाश है। ऐसे दिव्य हृदय-सिंहासन को भगवान निवास-योग्य शुद्ध बनायें और उस पर विराजमान होने हेतु परम दयालु भगवान का आह्वान करें, तो हमें उनकी दिव्य उपस्थिति की अनुभूति होगी। ○○○ **(समाप्त)**

भगवान जगन्नाथ और भगवत्पाद शंकर

उत्कर्ष चौबे

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ.प्र.)

श्रीजगन्नाथ के वर्तमान स्वरूप में प्राकट्य की तिथि और काल देवताओं, दानवों तथा मनुष्यों, सभी के लिए सर्वथा अगोचर है। उनकी दिव्य सत्ता अनादि, अनन्त और कालातीत मानी जाती है। भगवान जगन्नाथ का उल्लेख ऋग्वेद संहिता जैसे प्राचीनतम ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। दारु-निर्मित चतुर्मूर्ति के प्राकट्य से पूर्व नीलाचल शिखर पर भगवान् नीलमाधव की शिलामूर्ति की उपासना की जाती थी, ऐसा पुराणों व प्रागैतिहासिक साक्ष्यों का प्रमाण है। वे भक्तों को संसार-बन्धन से मुक्त कर मोक्ष प्रदान करने वाले हैं। 'वामदेव संहिता' तथा 'नीलाद्रि महोदय' में नीलमाधव के अन्तर्धान तथा उनके सहोदर स्वरूपों सहित श्रीजगन्नाथ के अवतरण का कालानुक्रमिक विवेचन अत्यन्त मार्मिक रूप में उल्लेखित है। पुरुषोत्तम श्रीजगन्नाथ समस्त ब्रह्माण्ड के परमाधिपति, विश्व-नियन्ता तथा आदिदेव माने गए हैं। वे काल और देश की सीमाओं से परे, सृष्टि-स्थिति-लय के परम कारण, समस्त द्रव्य और ऊर्जा के मूल स्रोत, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक तथा सर्वज्ञ हैं। वे ही अनादि परब्रह्म हैं, जिनकी महिमा का पार वेद भी पूर्णत: नहीं पा सकते।

ब्रह्मा की पाँचवीं पीढ़ी में उत्पन्न राजा इन्द्रद्युम्न सत्ययुग में भगवान् विष्णु के अनन्य उपासक थे। भगवान् शिव और देवी पार्वती के संवाद में यह प्रतिपादित है कि पंचमुख ब्रह्मा का आविर्भाव भगवान् नारायण की नाभि-कमल से हुआ और उसी दिव्य प्रसंग में माधव का प्राकट्य हुआ, जो पुरुषोत्तम क्षेत्र में 'नीलमाधव' के नाम से पूजित हुए। पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र, जिसे शंख-क्षेत्र भी कहा जाता है, पृथ्वी पर स्थित तीर्थों में सर्वोपरि माना गया है। यहीं ब्रह्मा ने यज्ञ सम्पन्न किया, जिसके फलस्वरूप नीलमाधव का दिव्य प्रादुर्भाव हुआ।

इस पुण्यभूमि पुरुषोत्तम अथवा शंख-क्षेत्र की महिमा, आध्यात्मिक गरिमा और दिव्य वैभव का सम्यक् वर्णन करना कठिन है। यह पावन धाम भारतवर्ष के उत्कल प्रदेश में स्थित है। यहाँ के निवासी धर्मपरायण, विनीत और सदाचार-समन्वित हैं तथा उत्कल ब्राह्मण वेद-वेदांग, पुराण और शास्त्रों में पारंगत, यज्ञादि-विधानों में निपुण तथा शुचिता एवं संयम से परिपूर्ण जीवन के अनुयायी हैं।

इस प्रकार श्रीजगन्नाथ का प्राकट्य केवल ऐतिहासिक घटना न होकर अनादि परब्रह्म की करुणामयी अवतार-लीला का दिव्य आलोक है, जो युग-युगान्तरों से भक्त-हृदयों को आलोकित करता आया है। अवन्तीपुरी-नरेश महाराज इन्द्रद्युम्न ने एक अवसर पर मालवदेश में एक दीप्तिमान, जटाधारी, अतिवृद्ध तपस्वी से पुरुषोत्तम-क्षेत्र की अप्रतिम महिमा का श्रवण किया। वे महात्मा भगवान के दिव्य धाम का सम्यक् विवरण प्रस्तुत कर अकस्मात् अन्तर्धान हो गए। इस अद्भुत घटना ने नृप के अन्तःकरण में तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न की। उन्होंने राजपुरोहित के अनुज विद्यापति को पुरुषोत्तम-क्षेत्र की सत्यावस्था के अन्वेषणार्थ प्रेषित किया।

विद्यापति अनेक दुष्कर मार्गों का अतिक्रमण कर वहाँ पहुँचे। उन्होंने विष्णुभक्त वनवासी-प्रमुख विश्ववसु से सख्य

स्थापित किया, जो नीलमाधव की गोपनीय उपासना करता था। दीर्घ प्रयत्न के उपरान्त विद्यापति को नीलमाधव के साक्षात् दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस अलौकिक रूप का सान्निध्य पाकर उनका चित्त विभोर हो गया। अवन्ती प्रत्यागमन पर उन्होंने समस्त वृत्तान्त राजा को सुनाया। राजा इन्द्रद्युम्न अत्यन्त हर्षित हुए तथा तत्काल पुरुषोत्तम-यात्रा का संकल्प किये।

नृप ने पुत्र वीरभद्र को राज्याधिकार सौंपकर, प्रजा, सम्बन्धी, सेनापति तथा देवर्षि नारद के साथ पुरुषोत्तन-क्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। किन्तु वहाँ पहुँचकर ज्ञात हुआ कि भीषण बालुकावात से पूर्वरात्रि में नीलमाधव अन्तर्धान हो गए। नृप विषादाकुल हो उठे। उस समय देवर्षि नारद ने ब्रह्मा से संबद्ध उस दिव्य रहस्य का उद्घाटन किया, जिसमें जगन्नाथ-प्राकट्य की भावी लीला निहित थी। इससे नृप को धैर्य प्राप्त हुआ। तदनन्तर नृप ने स्वप्न में समुद्र-तीर पर एक दिव्य चन्दन-द्रुम का दर्शन किया, जिससे अद्भुत सुगन्ध प्रस्फुटित हो रही थी तथा उसपर शंख-चक्र के चिह्न विद्यमान थे। यह दारु स्वयं भगवान के विग्रह का सूचक प्रतीत हुआ। उस पवित्र दारु को विधिवत् यज्ञ-मण्डप में लाया गया। इसी मध्य एक जर्जर-वपु वृद्ध तक्षक अकस्मात् प्रकट हुआ और एकान्त-गृह में पन्द्रह दिवसों में विग्रह-निर्माण का संकल्प लिया। नियतकालोपरान्त द्वार उद्घाटित होने पर भगवान जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा तथा चक्रराज सुदर्शन के दिव्य विग्रह प्रकाशमान हुये, किन्तु वह वृद्ध तक्षक अदृश्य हो चुका था। लोकश्रुति में वे स्वयं भगवान माने गये।

तत्पश्चात् महाराज इन्द्रद्युम्न देवर्षि नारद के साथ ब्रह्मलोक गमन कर, कल्पव्यतीत कालोपरान्त ब्रह्मा को साथ लेकर पृथ्वी पर पुनरागमन किए। ब्रह्मा ने शास्त्रीय-विधि से मंदिर का संस्कार एवं चतुर्मूर्ति की रत्नवेदिका पर प्रतिष्ठा की। 'नीलाद्रि-महोदय' तथा 'स्कन्दपुराण' में इस आख्यान का साम्यवर्णन प्राप्त होता है। राजा इन्द्रद्युम्न के काल-निर्धारण विषयक मतभेद विद्यमान हैं। ऐतिहासिक साक्ष्य इंगित करते हैं

श्रीजगन्नाथ मन्दिर, पुरी

कि विभिन्न कालो में अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ, जिन्हें प्राकृतिक आपदाओं अथवा आक्रमणों से क्षति पहुँची। धर्मनिष्ठ राजाओं ने पुनर्निर्माण द्वारा परम्परा को अक्षुण्ण रखा। प्राचीन इतिहास पूर्णतः उपलब्ध न होने पर भी आस्था की अखण्ड परम्परा अविच्छिन्न रही।

आदि गुरु शंकराचार्य के जीवन-काल के विषय में भी विविध मत प्रचलित हैं। कुछ अभिलेख ५०९–४७७ ईसा-पूर्व का संकेत देते हैं, अन्य ७८८–८२० ईस्वी को अधिक प्रामाणिक मानते हैं। कालडी (केरल) में शिवगुरु एवं आर्याम्बा के यहाँ जन्मे इस महापुरुष ने अल्पायु में वेद-वेदान्त का पूर्णाध्ययन किया। उन्होंने अद्वैत-वेदान्त को दार्शनिक दृढ़ता प्रदान की, समग्र भारत का परिभ्रमण कर शास्त्रार्थों में विजय प्राप्त की तथा चार मठों की स्थापना कर सनातन-धर्म की पुनःसंरचना की। यद्यपि उनका जीवन ३२ वर्ष का माना जाता है, तथापि उनकी कृतियाँ – भाष्य, स्तोत्र, प्रकरण-ग्रन्थ, भारतीय दर्शन को अमरत्व प्रदान करती हैं। उनके विषय में कहा गया है –

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशेकृतवान्भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्।।

श्रीजगन्नाथ-प्राकट्य की दिव्य लीला तथा आदि शंकराचार्य का अद्वैत-प्रवर्तन भारतीय आध्यात्मिक इतिहास के दीप्तिमान अध्याय हैं, जो श्रद्धा, भक्ति और ज्ञान की अखण्ड धारा को आज भी प्रवाहित कर रहे हैं। आदि शंकराचार्य ने अपने शिष्यों सहित नंगे पाँव एक से अधिक बार सम्पूर्ण भारतवर्ष का परिभ्रमण किया। दुर्गम पर्वतीय पथों, वनांचलों और निर्जन प्रदेशों को पार करते हुए उन्होंने युगों पूर्व धर्मसंस्थापन का महान कार्य सम्पन्न किया। वे विविध विद्याकेन्द्रों में शास्त्रार्थ हेतु उपस्थित होते, गहन दार्शनिक,

आध्यात्मिक एवं वैदिक विमर्शों द्वारा अपने अद्वितीय पाण्डित्य का परिचय देते तथा प्रतिद्वन्द्वी पण्डितों को तर्क, दर्शन और अध्यात्म के क्षेत्र में पराजित करते। उन्होंने देश के विभिन्न भागों में मठों की स्थापना कर सनातन धर्म की सुव्यवस्थित परम्परा का सूत्रपात किया।

अपने दिग्विजय-प्रवास में वे उत्कल प्रदेश भी पहुँचे। उस समय जगमगना (वर्तमान याजपुर) उत्कल की राजधानी थी और महाभावगुप्त ययाति केशरी राज्य का संचालन कर रहे थे। याजपुर पहुँचकर आचार्य ने पवित्र वैतरणी नदी में स्नान कर विरजातीर्थ का पावन स्पर्श किया तथा यज्ञ-वाराह के दर्शन किए। उत्कल-नरेश ने आचार्य का अत्यन्त आदर एवं श्रद्धा से स्वागत किया। आचार्य ने राजा से भगवान जगन्नाथ के विषय में पूछा। राजा ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की और श्रीक्षेत्र में स्थित सेवायतों से समाचार प्राप्त करने हेतु दूत प्रेषित किया। दूत ने लौटकर यह सूचना दी कि बौद्ध व यवन आक्रमण के कारण विग्रहों को सुरक्षित रखने हेतु सोनपुर स्थानान्तरित कर दिया गया है।

'मादला पंजी' के उल्लेखानुसार, शोभनदेव के राज्य के द्वितीय वर्ष में दिल्ली के रक्तबाहु ने पुरी पर आक्रमण किया। (मदला पंजी में उल्लिखित 'रक्तबाहु' को आधुनिक इतिहासकारों ने दक्कन के राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द-तृतीय के साथ अभिहित किया है। उनके मतानुसार वही आगे चलकर उड़ीसा (ओड्रदेश) पर भी अधिकार स्थापित करने वाला शासक बना। कहा जाता है कि उसके द्वारा पराजित शासक भौमकर वंश के राजा शुभकरदेव-प्रथम थे।) उस संकट-काल में पुजारियों ने परमेश्वर के पावन विग्रहों को सुरक्षित रखने हेतु सोनपुर ले जाकर उन्हें भूमिगत समाधि देकर ऊपर वटवृक्ष रोप दिया। लगभग १४४ वर्षों तक वह विग्रह वहीं रहा। इस अवधि में भारत पर अफगान एवं मोगोल शक्तियों का आधिपत्य रहा, जिससे श्रीजगन्नाथ के सेवकों में भय व्याप्त रहा। आचार्य के निर्देश पर राजा ययाति केशरी सोनपुर की ओर प्रस्थान किए। यह कार्य अत्यन्त कठिन और श्रमसाध्य था। वटवृक्ष की जड़ों के समीप भूमि गहराई तक खोदी गई। दारु-विग्रह तो नष्टप्राय हो चुके थे, किन्तु 'ब्रह्म-वस्तु' सुरक्षित पाया गया। शंख-क्षेत्र में आचार्य और राजा ने पुनः प्रतिष्ठा की योजना बनाई। नवीन दारु (नीम-काष्ठ) से विग्रह निर्मित कर विधिपूर्वक रत्नवेदिका पर स्थापित किए गए।

कुछ वैष्णव मतों के अनुसार प्राचीन विग्रह पूर्णतः नष्ट हो चुका था। तब नेपाल की गंडकी नदी से पवित्र शालग्राम-शिलाएँ मँगाई गईं और उन्हें ब्रह्म-तत्त्व के रूप में स्थापित कर नवीन प्रतिमाओं का निर्माण किया गया। वृक्ष को काटकर गुफानुमा स्थल से प्रभु को सावधानीपूर्वक निकाला गया। आदि शंकराचार्य ने परीक्षण कर पाया कि पूर्ववर्ती ब्रह्म-पदार्थ की स्थिति क्षीण हो रही थी। उन्होंने अपने शिष्य भारती आचार्य को नेपाल भेजा, जहाँ के हिन्दू नरेश ने सहयोग प्रदान किया। गंडकी से प्राप्त दिव्य शालग्रामों को ब्रह्म-पदार्थ सहित दारु-विग्रहों के ब्रह्म-स्थल में प्रतिष्ठित किया गया। आचार्य के आग्रह पर नेपाल-नरेश को 'पट्टमहानायक' की मानद उपाधि प्रदान की गई तथा उन्हें प्रत्यक्ष पूजा का अधिकार प्राप्त हुआ। इस प्रकार त्रिदेवों को पुनः रत्नसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया गया।

आदि शंकराचार्य ने समुद्रतट पर गोवर्धन मठ की स्थापना की। उन्होंने शैव और वैष्णव परम्पराओं में समन्वय स्थापित किया, स्मार्त-रीति का प्रवर्तन किया तथा श्रीजगन्नाथ के महाप्रसाद की परम्परा को सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। वे हरि, हर और शक्ति, तीनों उपासना-पंथों के अद्वितीय समन्वयक थे। उन्होंने भगवान जगन्नाथ में समस्त देवत्व की एकात्मता का दर्शन किया। आचार्य ने 'जगन्नाथाष्टक' सहित भगवान शिव और विष्णु की स्तुति में अनेक स्तोत्रों की रचना की। उनके प्रिय शिष्य पद्मपाद को गोवर्धन मठ का प्रथम आचार्य नियुक्त किया गया।

आचार्य शंकर के लिए श्रीजगन्नाथ वह ब्रह्म हैं, जो 'सच्चिदानन्द' स्वरूप होकर भक्तों के हृदय में और नीलाचल के सिंहासन पर समान रूप से विराजमान हैं। वे निराकार भी हैं और भक्तों के प्रेम से साकार भी। इस प्रकार शंकराचार्य की दृष्टि में श्रीजगन्नाथ भक्ति और ज्ञान, सगुण और निर्गुण, वैष्णव और शैव, सभी धाराओं का अद्भुत समन्वय हैं। महामनीषी आदि शंकराचार्य द्वारा रचित 'कदाचित् कालिन्दी-तट-विपिन-संगीत करवो' से आरम्भ होनेवाला श्रीजगन्नाथाष्टक आज भी श्रीक्षेत्र में प्रत्येक भक्त के अधरों की शोभा है और भगवान के प्रति अद्वैत-भाव से ओतप्रोत भक्ति का अमर प्रतीक है। ○○○

गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान

गुरु की महिमा अद्‌भुत है, अद्वितीय है, अतुलनीय है, अलौकिक है, असाधारण है और अवर्णनीय है। गुरु के विषय में कहा गया है –

हरि ने जनम दियो जग माही।
गुरु ने आवागमन छोड़ाही।।

अर्थात् भगवान ने जीव को जग में जन्म दिया है, लेकिन गुरु उसे आवागमन से मुक्ति दिलाते हैं। तभी तो गुरु की कृपा से सुख-दुख और जन्म-मृत्यु रूपी भवसागर से पार उतर जानेवाले और भगवत्-साक्षात्कार करनेवाले गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस में गुरु की वन्दना करते हुए कह रहे हैं –

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भव रुज परिवारू।।।
सुकृति संभु तन बिमल बिभूती।
मंजुल मंगल मोद प्रसूती।।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी।
किएँ तिलक गुन गन बस करनी।।
श्री गुर पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।
दलन मोह तम सो सप्रकासू।।
बड़े भाग उर आवइ जासू।।
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।
सुझहिं राम चरित मनि मानिक।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।।

अर्थात् मैं गुरु महाराज के चरण-रज की वन्दना करता हूँ, जो सुरुचि (सुंदर स्वाद), सुगन्ध तथा अनुराग रूपी रस से पूर्ण है। वह अमर मूल (संजीवनी जड़ी) का सुन्दर चूर्ण है, जो सम्पूर्ण भवरोगों के परिवार को नाश करनेवाला है।

वह रज सुकृती (पुण्यवान पुरुष) रूपी शिवजी के शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुन्दर कल्याण और आनन्द की जन्मदाता है, भक्त के मनरूपी सुन्दर दर्पण के

मैल को दूर करनेवाली और तिलक करने से गुणों के समूह को वश में करनेवाली है।

श्री गुरु महाराज के चरण-नखों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है, जिसका स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वह प्रकाश अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करनेवाला है, वह प्रकाश जिसके हृदय में आ जाता है, उसके बड़े भाग्य हैं। उसके हृदय में आते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्रि के दोष-दुख मिट जाते हैं एवं श्रीरामचरित्र (भगवच्चरित्र) रूपी मणि और माणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ जो जिस खान में हैं, वे सब दिखायी पड़ने लगते हैं।

प्रस्तुत चौपाइयों में सन्त तुलसीदास जी यह स्पष्ट कहना चाहते हैं कि गुरुकृपा व गुरुज्ञान से शिष्य के जीवन से अज्ञानरूपी अन्धकार का समूल नाश हो जाता है और उसके हृदय में विवेकरूपी निर्मल नेत्र खुल जाते हैं, जिनसे भगवान जहाँ भी हैं, जैसे भी हैं, वे उसे दिखाई पड़ने लगते हैं अर्थात् उसे भगवत्-साक्षात्कार हो जाता है।

अपने निज जीवन में गुरु-कृपा को अनुभव करनेवाले और गुरु-कृपा से ब्रह्मज्ञान पाकर घट-घट में राम को देखनेवाले सन्त कबीर ने गुरु के विषय में कितनी सुन्दर बात कही है! –

गुरु सामान दाता नहीं, याचक शिष्य समान।
तीन लोक की संपदा, सो गुरु दीन्हा दान।।
लक्ष कोस जो गुरु बसै, दीजै सुरति पठाय।
शब्द तुरी असवार ह्वे, छिन आवै छिन जाय।।
गुरु को शिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं।

कहैं कबीर ता दास को, तीन लोक भय नाहिं।।
गुरु मूरति गति चंद्रमा, सेवक नैन चकोर।
आठ पहर निरखत रहे, गुरु मूरति की ओर।।
गुरु शरणागति छाड़ि के, करै भरोसा और।
सुख संपति की कह चली, नहीं नरक में ठौर।।
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास।
गुरु सेवा ते पाइये, सदगुरु चरण निवास।।
अहं अगिन निशि दिन जरै, गुरु सो चाहे मान।
ताको जम न्योता दिया, होउ हमारा मेहमान।।
पंडित पढ़ि गुनि पचि मुये, गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत्य शब्द परमान।।
मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पांव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

अर्थात् गुरु के समान कोई दाता नहीं और शिष्य के समान कोई याचक नहीं; क्योंकि गुरु ने त्रिलोक की सम्पत्ति से भी बढ़कर ज्ञान-दान शिष्य को दे दिया। इसलिए ऐसे सद्गुरु यदि लाख कोस पर भी निवास करते हों, तो भी अपना मन उनके चरणों में लगाते रहो। गुरु के सदुपदेश रूपी घोड़े पर सवार होकर अपने मन से गुरुदेव के पास क्षण-क्षण आते-जाते रहना चाहिए अर्थात् मन से गुरु का सदैव ध्यान करना चाहिए और उनके उपदेश पर चलना चाहिए।

गुरु को अपना सिर-मुकुट मानकर, उनको सर्वोपरि मानकर उनकी आज्ञा में चलो। ऐसे शिष्य सेवक को तीनों लोकों में कोई भय नहीं हो सकता। गुरु की मूर्ति चन्द्रमा के समान है और शिष्य-सेवक के नेत्र चकोर के तुल्य हैं। अत: आठों पहर गुरु-मूर्ति रूप चन्द्रमा की ओर चकोर की तरह देखते रहो। उन्हें अपने मन, हृदय और आत्मा में देखते रहो।

ऐसे ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरणागति से बढ़कर कुछ भी नहीं। अत: ऐसे गुरु की शरणागति को छोड़कर जो अन्य दैव-गोसैंया का भरोसा करता है, उसकी सुख-सम्पत्ति की कौन कहे, उसे तो नरक में भी स्थान नहीं मिलता अर्थात् उसे अन्यत्र कहीं भी शरण नहीं मिलती, पर शिष्य को गुरु की शरणागति पा लेने के बाद भी सावधान ही रहना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरणागति पाकर भी यदि शिष्य उनसे ज्ञान ग्रहण करने के बजाय अहंकार की आग में दिन-रात जलता है और गुरु से ही अपना मान-सम्मान चाहता है, तो उसको मानो बुरी वासनारूपी यम ने ही निमन्त्रण दिया है कि आओ तुम हमारे पाहुन बनो, गुरु शरण योग्य तुम नहीं हो।

बड़े-बड़े विद्वान शास्त्रों को पढ़ते रहते हैं, परन्तु गुरु के बिना उन्हें ज्ञान नहीं मिलता और ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती। इसलिए सारे भ्रम-संशय, संदेह, मिथ्या, मान-अपमान को तजकर गुरु की शरण में आ जाओ और पूर्ण भक्तिभाव व समर्पण के साथ गुरु का ध्यान करो; क्योंकि गुरु का ध्यान ही ध्यान का मूल है। गुरु-चरणों की पूजा ही पूजा का मूल है। गुरु के वचनामृत ही सब नाम-जपों से बढ़कर हैं। सत्य के साक्षात्कार के लिये सत्य की जिज्ञासा ही सत्य का मूल है।

उपर्युक्त दोहों में वास्तव में सन्त कबीर इस बात पर जोर दे रहे हैं कि गुरु के समान कोई दाता नहीं, जो शिष्य को दान में ब्रह्मज्ञान ही दे देते हैं और उस शिष्य के समान कोई याचक नहीं, जो गुरु से मात्र ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मप्राप्ति की ही याचना करता है।

यदि शिष्य में सत्य को जानने की जिज्ञासा हो, उसके लिए ब्रह्मजिज्ञासा ही सर्वोपरि हो, तो सद्गुरु उसकी सच्ची जिज्ञासा से अनभिज्ञ नहीं रहते और वे उसकी जिज्ञासा पूरी करके रहते हैं और उसे सत्य का साक्षात्कार, ब्रह्म-साक्षात्कार होकर रहता है। इसमें कोई संदेह नहीं। अस्तु समस्त संशय, संदेह को तजकर शिष्य को गुरु के समक्ष सम्पूर्ण समर्पण कर देना चाहिए।

पूर्ण समर्पण से ही शरणागति पूर्ण होती है और प्राप्ति होती है। ऐसी शरणागति से शिष्य को सब कुछ प्राप्त हो जाता है। उसे त्रिलोक से भी बड़ी सम्पदा अर्थात् ब्रह्मज्ञान, भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

गुरु की आज्ञा ही शिष्य के लिए भगवद्-आज्ञा है। गुरु की सेवा ही भगवत्सेवा है। गुरु का कार्य करना ही भगवत्कार्य करना है। बड़े हतभागी हैं वे लोग, जो सद्गुरु को पाकर भी सद्गुरु से ब्रह्मजिज्ञासा के बजाय सांसारिक सुख-सम्पदा की याचना और कामना करते हैं।

सागर के पास बैठकर भी उसमें छलाँग लगाने के बजाय कोई सागर से दो बूँद जल याचना करे, तो भला उसे कौन समझदार कहेगा? बड़ा बड़भागी है वह व्यक्ति, वह शिष्य, वह साधक, वह आराधक, वह उपासक; जो निज मान-अपमान, संशय, संदेह को तजकर अपने गुरु से गुरु के

अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता, अपने भगवान से भगवान के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता, क्योंकि उसे भगवान से कम कुछ भी स्वीकार नहीं होता। वह मात्र गुरु को चाहता है। वह केवल एकमात्र भगवान को ही चाहता है। इससे कम उसे कुछ भी स्वीकार नहीं एवं इससे कम उसे कुछ भी पसन्द नहीं।

उसके लिए गुरु का आदेश ही ईश्वर का आदेश है। उसके लिए गुरु की सेवा ही ईश्वर की सेवा है, ईश्वर की पूजा है। उसके लिए गुरु-कार्य ही ईश्वरीय कार्य है। उसके लिए गुरु की इच्छा ही सर्वोपरि है। उसके लिए गुरु की इच्छा ही ईश्वर की इच्छा है। उसके लिए गुरु की योजना ही ईश्वरीय योजना है; जिसमें उसे अपना तन, मन, प्राण सब कुछ अर्पण करना है और सचमुच यही है सच्ची गुरु भक्ति, सच्ची ईश्वरभक्ति, जिससे शिष्य, साधक, उपासक, आराधक निहाल हो जाता है। ○○○ (अखण्ड ज्योति, जनवरी, २०२६ से साभार)

नाम का बीज बिखेर दो, तभी तो नाम की फसल पैदा होगी

तुम लोगों की तो बस वही एक बात है, नाम कैसे करूँ? अरे, नाम लेते-लेते नाम स्वयं ही मन के भीतर घर बना लेता है, समझे? मन तो आसक्ति के नशे में दौड़ रहा है। आसक्तियाँ ही तो मन की नाक में नकेल डालकर उसे घुमा रही हैं। उनके समान दुष्ट भला और कौन है? यही बात तो अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कही थी। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से सहमत हुए कि मन बड़ा दुष्ट है और बोले – 'हे अर्जुन! आसक्तियों के प्रति वैराग्यवान बनो और नित्य अभ्यास करते रहो।' अभ्यास करते-करते मन स्थिर हो जायेगा। मन जितना ही विषयों की ओर दौड़े, उतना ही तुम मन के भीतर विचार करते रहना। अरे विषय आदि तो सब अनित्य हैं, आज हैं, कल नहीं। अनित्य चीजों की जितनी आवश्यकता पड़े, उतनी ही लेकर तुम सन्तुष्ट रहो। उससे अधिक क्यों लोगे? अनित्य का अधिक बोझ बढ़ाने से वहाँ नित्य वस्तु के लिए जगह न रह जायेगी। अनित्य वस्तुएँ जोड़-जोड़कर तो नित्य वस्तुओं की सृष्टि नहीं हो सकती। नित्य वस्तु तो एक वही ब्रह्म वस्तु है, ब्रह्म को छोड़ बाकी सब अवस्तु समझना। इस प्रकार मन को समझाना। समझाते-समझाते देखोगे कि विवेक जाग उठा है। जानते हो न, राम ने सभा के बीच हनुमान को मुक्ता की माला दी थी। परन्तु हनुमानजी ने माला को हिलाडुलाकर देखा, एक दाने को दाँत से काटकर भी देखा, पर ज्योहीं देखा कि उसमें रामनाम नहीं लिखा है, उन्होंने उसे तुरन्त फेंक डाला। यह देखकर लक्ष्मण नाराज हो गये और बोले, 'बन्दर है न, मुक्ता की माला का मर्म भला क्या जाने! इतना सुन्दर माला को दाँतों से काटकर बरबाद कर दिया।' लक्ष्मण का दुख देखकर रामजी बोले, 'उससे पूछो कि उसने ऐसा क्यों किया?' हनुमानजी को पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया, 'देख रहा था कि इसके भीतर रामनाम है या नहीं?' समझे न! इसी प्रकार का विचार करना चाहिए। विचार को जाग्रत रखना ही तो सबसे बड़ी तपस्या है। जो विचार करना जानता है, वह कामनाओं के साथ हर घड़ी लड़ाई करता रहता है। अरे, विचार और विवेक को जगा डालो, तभी तो कामनाओं के साथ लड़ सकोगे! सद्सत् बुद्धि पैदा हुए बिना कामनाओं को रोकोगे भी तो कैसे? बाहर की खिड़की से जो गर्द मन के कमरे में आ रही है, पहले उसी को साफ करो; विचार करके खिड़की अर्थात् इन्द्रियों के सामने 'प्रवेश-निषेध' का नोटिस टाँग दो। फिर उस नोटिस को भी न मानकर जो गर्द भीतर घुस आएगी, उन सबको पुलिस अर्थात् विवेक के हाथ में दो। विवेक-पुलिस की सहायता से मन के साथ मन को लड़ाते रहो। तभी तो मन की जगह खाली होगी और तब उस जगह पर भगवान को बिठा सकोगे। भगवान को न बैठाने तक कामनाओं पर विजय नहीं पा सकोगे। जानते हो न – 'मन में ही कामना का बीज है, भीतर की इन्द्रियाँ और बाहर के विषय उस बीज को रस दे रहे हैं! बीज के ऊपर रस पड़कर भरपूर फसल हो रही है। उस फसल को काटना होगा और बीजों को नष्ट कर देना होगा। उसके बाद उसी जगह पर भगवान के नाम का बीज बिखेर देना होगा। तभी तो नाम की फसल पैदा होगी। इस समय उसमें काम की फसल हो रही है। इसीलिए श्रीरामकृष्ण कहते थे, जहाँ काम, तहाँ राम नहीं; और जहाँ राम, तहाँ काम नहीं।

– स्वामी अद्भुतानन्द जी महाराज

रामगीता (६/५)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

पर अयोध्या में कैकेयी का जो इतना विनाश हुआ, वह इसलिए हुआ कि राम हितैषी नहीं हैं, मेरी हितैषी मन्थरा है और मन्थरा जैसा हित कर सकती थी, वैसा की। दे दी उसने कैकेयी को दीक्षा। दीक्षा देकर बता दिया, जैसे गुरु लोग बता देते हैं, ऐसा बैठना, ऐसे जप करना, ऐसे पाठ करना, वैसे ही उसने वह सब सिखा दिया। वह अनुष्ठान कहाँ किया जा रहा है? अनुष्ठान तो शान्त स्थान में किया जाता है। पर मन्थरा का दिया हुआ जो मंत्र है, उसकी साधना शान्त स्थान में नहीं, वह तो कोप भवन में ही उसका अनुष्ठान पूर्ण हो सकता है। वस्त्र बताते हैं न! शुद्ध वस्त्र पहनकर, रेशमी वस्त्र पहनकर पूजा पाठ कीजिए। मन्थरा ने कहा – रेशमी वस्त्र उतारिए, मोटे-मोटे कपड़े पहन लीजिए। यदि वैसा कपड़ा आपके पास न हो, तो मैं ला देती हूँ अपना कपड़ा – **भूमि सयन पट मोट पुराना।**

ये रेशमी वस्त्र पहनकर यह अनुष्ठान नहीं होगा। यहाँ तो तुम्हें मोटे कपड़े पहनने पड़ेगें। मेरा कपड़ा तुम पहन लो। उसके साथ-साथ मन्त्र दे दिया। गुरु बताते हैं साधकों को, ''देखो, कोई विपत्ति आवे, भय आवे, आकर्षण आवे तो विचलित मत हो जाना। कई लोग बेचारे अनुष्ठान में कुछ ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं कि कभी लोभ में पड़ जाते हैं, तो कभी डर में। आगे बोली, देखो, दशरथ आयेंगे। याद रखना, उन्हीं से वरदान लेना है। देवता से वरदान तो अनुष्ठान में लिया ही जाता है। दशरथ आयेंगे और उनसे ही वरदान मिलेगा। लेकिन सावधान रहना। दशरथजी आयेंगे, तो सत्य की दोहाई देंगे। कहेंगे कि मैं सत्यवादी हूँ। सूर्यवंश में तो सत्य बोला जाता है। आप बिल्कुल चुप रहिए, बोलिएगा नहीं। जब तक उनके मुँह से राम की शपथ न निकल जाये, तब तक मत बोलना। ऐसा कोई उपाय करना कि ये राम की शपथ लेकर कहें, तब तुम वरदान माँग लेना। कितनी दूरदर्शी थी ! अनुष्ठान बतानेवाले तान्त्रिक बड़े चमत्कारी भी होते हैं। मन्थरा कोई कम चमत्कारी थोड़े ही थी। दशरथजी विरागी तो थे नहीं, वे भावुक और रागी थे। वह जानती थी। रागी तो इतना कि वे यह सोचकर वहाँ गये कि कैकेयी जी स्वागत करेंगी और बड़ी प्रसन्न हो जाएँगी। क्योंकि कैकेयी जी श्रीराम के शील और स्वभाव से इतना प्रभावित थीं कि वे स्वयं कहने लगी थीं कि मैं यही चाहूँगी कि राम को राज्य मिले। दशरथ जी कल्पना कर रहे थे कि मैं राम को राज्य देने की बात कहूँगा, तो कैकेयी बहुत प्रसन्न हो जायेंगी। इसीलिए लिखा हुआ है –

साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ।
गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेहँ।।
२/२४/०

वहाँ जाकर उन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया, वह कामी और रागी व्यक्ति की भाषा थी। उन्होंने देखा –

भूमि सयन पटु मोट पुराना।
दिए डारि तन भूषन नाना।।
कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी।
अनअहिवातु सूच जनु भाबी।। २/२४/६-७

राजा डर गये, उनसे पूछने लगे और कैकेयीजी के सौन्दर्य की स्तुति करने लगे –

बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर।।
२/२५/०

हे सुमुखी, हे सुलोचनी, हे पिकवचनि, हे गजगामिनी, क्यों नाराज हो? तुम जो चाहे माँग लो। दशरथजी इस प्रकार बहकने लगे –

कहु केहि रंकहि करौं नरेसू।
कहु केहि नृपहि निकासौं देसू।। २/२५/२

किस राजा को दरिद्र बना दूँ, किस राजा को देश से निकाल दूँ। किस देवता को मार डालूँ? अरे तुम्हारा शत्रु अगर इन्द्र भी हो, तो उसको मैं मार सकता हूँ। सब बोल रहे हैं। स्तोत्रपाठ हो रहा है न ! लेकिन उस अनुष्ठान में बैठी हुई जो देवी है, जिन्होंने मन्थरा से दीक्षा ली है, वह बोल ही नहीं रही है। किसी ने गोस्वामीजी से पूछा कि इतना स्तोत्र सुनकर भी बोल क्यों नहीं रही हैं। बोले – गुरुजी की आज्ञा हो गई है, बोलना मत। कौन गुरु? मन्थरा। अरे वह तो दासी है, गुरु कैसे हो गई। बोले – वह साधारण गुरु थोड़े ही है? उसको तो गोस्वामीजी ने उपाधि दिया। भरत कौन है? बोले – **भगत सिरोमणि भरत** ...। भरतजी भक्त शिरोमणि हैं। मन्थरा? ये भी शिरोमणि है। पर किसकी शिरोमणि है? बोले – **कोटि कुटिलमनि गुरु पढ़ाई।**

करोड़ों कुटिलों में भी जो सर्वश्रेष्ठ कुटिल हो, उसने कैकेयी को पढ़ाया, शिक्षा दी, दीक्षा दी, साधना पद्धति बतायी और मंत्र दिया। मन्त्र क्या दिया? अहम्, मैं – मेरा। वरदान क्या माँगना? मात्र यही दो वरदान माँगना है। ये दो वरदान तभी माँगना, जब महाराज दशरथ राम की शपथ लेकर कहें, माँगो मैं दूँगा, मैं राम की शपथ लेता हूँ। जब वे राम की शपथ लेंगे, तो टाल नहीं पायेंगे। क्योंकि श्रद्धालुजनों की यह मान्यता है कि किसी के नाम की शपथ लेकर यदि उस शपथ का पालन न किया जाये, तो जिसके नाम की शपथ ली गयी है, उसकी मृत्यु हो जायेगी या उसका अनिष्ट हो जाता है। यह हुआ। मन्थरा ने अनुष्ठान, विधि, मन्त्र सब कुछ सिखाया। वह मन्त्र इतना प्रसिद्ध है, जिसके बारे में बताने की आवश्यकता नहीं है। मन्थरा ने कहा देवी, अपना अपना ही होता है, पराया पराया ही होता है। यह मन्त्र तो घर-घर में जपा जाता है। हम आप सब निरन्तर यही जपते रहते हैं। मन में मानो यही मन्त्र बैठ गया है, हर समय मुँह से यही निकलता है। भरत आपके अपने हैं। राम कैसे भी हों, पर हैं तो पराये ही न? इस महामन्त्र का जप अनुष्ठान, विधिपूर्वक हो। वह देवता, ये सब एक नई बात हो गई। देवता प्रसन्न होकर वरदान देते हैं, पर यहाँ देवता तो इतने दुखी होकर, विवश होकर, रोते हुए कह रहा है, वरदान माँगो, पर वरदान देने के बाद मैं बचूँगा नहीं। माँगनेवाले ने भी कहा – बस, जल्दी से वरदान दो, उसके बाद तुम्हारा मरना ही अच्छा है। मानो भस्मासुर वाली बात हो गई। वरदान देकर दशरथ पश्चात्ताप में डूब गये। वरदान देना उनके लिए मृत्यु का कारण बन गया। कैकेयी के अन्त:करण में कितनी निर्दयता आ गई ! इस मैं और मेरेपन की वृत्ति से कहाँ तक व्यक्ति विकृत हो सकता है, यह दिखाई देता है। दशरथजी को कैकेयी में इतना गुण दिखाई दे रहा था, कहने लगे थे – कैकेयी, तुम्हारा मुँह तो चन्द्रमा है और मैं तो चकोर हूँ –

जानसि मोर सुभाउ बरोरू।
मनु तव आनन चंद चकोरु। २/२५/४

मानो अन्तर्यामी ने सोचा कि अभी तक तो 'रामचन्द्र चन्द्र तू चकोर मोहि कीजै' भक्तों की यह भाषा थी, राम चन्द्र हैं और मैं चकोर हूँ। पर ये दशरथजी तो रामचन्द्र के भी चकोर और काम चन्द्र के भी चकोर हैं। जब ऐसे हैं, तो परिणाम सामने आ गया। मानो यह उनमें वैराग्य उत्पन्न करने के लिए था। क्यों? कैकेयी के व्यवहार से उनको इतनी चोट लगी, इतनी पीड़ा हुई कि जिस कैकेयी को वे संकट से बचानेवाली, रक्षा करनेवाली समझते थे, स्नेह करनेवाली मानते थे, जब उसकी निष्ठुरता, निर्दयता, क्रूरता उनके सामने आई, तो वे चकित हो गये। यह वही कैकेयी है, जो मेरी सेवा में, रणांगण में, भीषण युद्ध में भी मेरे साथ मेरे रथ पर होती थी। रथ के पहिए का कील गिर जाने पर पहिए को हाथ की उंगली से रोके रखी। पहिया गिरने नहीं दिया। अपने प्राण को संकट में डालकर मुझे बचाया। मेरे प्राणों की कितनी चिन्ता थी इसको और आज भी उसी बात को याद दिला दूँ कैकेयी को और कह दूँ कि राम के वन जाने पर मैं जीवित नहीं रहूँगा, मेरी मृत्यु हो जायेगी, फिर तो यह अपना वरदान वापस ले लेगी। भरत को राज्य देने में कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन जब उन्होंने कहा कि तुम जानती हो महारानी, अगर तुमने राम को वन भेजने का आग्रह किया, तो निश्चित रूप से मेरी मृत्यु हो जायेगी। अब भी मन में भरोसा था कि अब नहीं कहेगी राम को वन जाने के लिए। कहेगी कि अच्छा, तो कल भरत को राज्य दे दीजिए।

आपकी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। आप भरत को राज्य देने के लिए तैयार हैं, तो दे दीजिए, बस ठीक है। लेकिन उस

क्रूरता की आप कल्पना कीजिए ! कैकेयी की ऐसी भाषा थी ऊपर से, भीतर कितनी निर्दयता। हाँ महाराज, आपने मृत्यु की बात कही, तो मृत्यु तो आपकी भी होगी और मेरी भी होगी। आपकी मृत्यु होगी तब, जब राम वन जाएँगे और मेरी मृत्यु होगी तब, जब राम कल सुबह वन नहीं जाएँगे। अब या तो महाराज की मृत्यु हो या महारानी की। बहुधा पत्नी बहुत भावुक होती है, सदा चाहती है कि पति के सामने ही मेरा देहान्त हो जाये, पति सदा जीवित रहें। पर कैकेयी ने यह सुनने के बाद क्या कहा? देखिए शब्द क्या है –

होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न राम बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं।।

२/३३/०

कैकेयी के शब्द हैं, महाराज जरा सोचिए। 'इस सोचिए' शब्द पर आपने ध्यान दिया? क्या समझाना चाहती हैं? मानो संकेत यह था कि राम को वन भेजकर आपने शरीर छोड़ दिया, तो आपका यश होगा कि धन्य हैं राजा, जिन्होंने सत्य के लिए पुत्र को भी छोड़ दिया। यदि मेरी मृत्यु होगी, तो आपको कलंक लगेगा। मैं चाहती हूँ कि आपका यश बचा रहे, भले ही मृत्यु हो जाये, मरना तो पड़ता ही है। मेरी मृत्यु में आपको कलंक लगेगा। महाराज यह समझ लीजिए, विचार कर लीजिए। कितनी निर्दयता है! मानो क्रूरता की पराकाष्ठा है। गोस्वामीजी से पूछा किसी ने कि कैकेयी का शरीर किससे बना हुआ था। उन्होंने कहा – **जौ कठोर धनु धरे सरीरा।**

जैसे निष्ठुरता ही शरीर धारण करके कैकेयी बन गई है। इसका तात्पर्य यह था कि तब जाकर राजा को वैराग्य हुआ। तब राजा ने सोचा, मैं तो सोचता था कि यह मुझसे कितना प्रेम करती है! मेरे शरीर-प्राण की रक्षा के लिए कितना बड़ा बलिदान करती है! पर यह तो मुझे मारने पर तुली हुई है। जब राम वन चले गये, तो पहला काम उन्होंने क्या किया? कौशल्याजी के महल में, जहाँ कभी भूले भटके चले जाया करते थे, तत्काल कैकेयी का भवन छोड़कर यह कहकर चले गये –

जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई।
आँखि ओट उठि बैठहि जाई।। २/१६१/८

चाहे जो हो, अपना मुख काला कर, मेरे आँखों से दूर चली जा। पर कैकेयी बैठी हुई है, मैं क्यों जाऊँ? महल मेरा है। तो फिर कहा कि अच्छा, मैं ही चला जाता हूँ –

कौसल्या गृह गयो लेवाई।

प्रभु यह चाहते थे कि महाराज ने राग का रस ले लिया, पर वह वैराग्य तब आयेगा, जब अपनी इच्छा की प्रतिकूलता का सामना करना पड़ेगा। इसीलिए प्रभु ने जान-बूझकर यह सब किया। जब हमारी इच्छा पूरी न हो, जिन पर हमारा बड़ा भरोसा है, उनके द्वारा जब निर्दयता, दुर्व्यव्यहार, कठोरता होने लगती है, तो सचमुच जो थोड़ा विचारवान होता है, उसमें वैराग्य आता है। अब जो विचारवान नहीं होते, वे तो सब सह ही लेते हैं, सहना उनकी प्रकृति बन जाती है। कभी तुलसी जयन्ती पर कवयित्री शान्ती देवी ने कविता सुनाई कि प्रणाम तो रत्नावली को है, अगर उन्होंने तुलसी दास को फटकारा न होता, तो तुलसीदास तुलसीदास न होते। तो मैंने कहा कि रत्नावली की प्रशंसा मैं करता हूँ, लेकिन इतना न मान लीजिए कि रत्नावली ने फटकार दिया, इसलिए संत हो गए। क्योंकि पत्नी के फटकारने से संत हो जाते, तो घर-घर संत हो जाते। वह तो लोगों को पड़ती ही रहती है। इसलिए फटकार कारण बना, लेकिन वही सब कुछ थोड़े ही है। उनमें तो पहले से ही संस्कार था, भक्ति थी। उन्होंने प्रारम्भ से ही स्वामी नरहरि दास से दीक्षा ली थी। ऐसी स्थिति में दशरथजी में सब संस्कार तो पहले से था ही, लेकिन जिस समय वह अनुभव हो गया कि जिस कैकेयी से मैंने इतनी ममता जोड़ी, इतना घनीभूत विश्वास किया, अहो, वह इतनी निर्दयी हे, जो हमारे राम को दूर भेज रही है। भगवान का जो उद्देश्य था, वह पूरा हो गया। ऊपर से प्रभु दूसरा दृश्य दिखा रहे हैं, पर भीतर जो उद्देश्य वैराग्य था, वह पूरा हो गया। ममता का त्याग बहुत कठिन है, किन्तु व्यक्ति के सामने जब बहुत कठिन स्थिति आ जाती है, तब हो ही जाता है। इसीलिए गोस्वामीजी ने कहा, दो ही उपाय हैं। क्या? मेरापन जोड़ना ही है, तो श्रीराम से जोड़ो –

कै करु ममता राम सो कै ममता परहेलु

दोनों में से जो तुम्हें अच्छा लगे, या तो ममता राम से करो या ममता का त्याग कर दो। आज इतना ही, मानो लक्ष्मणजी के प्रश्न के उत्तर में भगवान श्रीराम ने आगे चलकर वैराग्य का जो उपेदश दिया, उसकी चर्चा आगे बचे हुए दिनों में करेंगे।

बोलिये सियावर रामचन्द्र की जय ! **(क्रमशः)**

व्रज में श्रीमाँ सारदा

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन

भूमिका

जानकीराधिकारूपधारिणीं सर्वमङ्गलाम्।
चिन्मयीं वरदां नित्यां सारदां मोक्षदायिनीम्।।

स्वामी अभेदानन्द जी महाराज ने श्रीमाँ के ध्यान-मन्त्र में श्रीमाँ को माता सीता और राधारानी का अवतार कहा है – जिन्होंने पूर्व अवतारों में जानकी तथा राधा का रूप धारण किया, जो सर्वमंगलस्वरूपिणी, चैतन्यमयी, वरदायिनी, नित्यस्वरूपिणी एवं मोक्षदायिनी हैं, उन श्रीसारदादेवी का ध्यान करो।

ब्रह्मचारी अक्षयचैत्यन महाराज ने श्रीमाँ की जीवनी में उल्लेख किया है, कभी-कभी वे श्रीमती राधारानी के भाव में आकर दूसरों की दृष्टि से ओझल होकर यमुना में चली जाती थीं। बाद में उनकी संगिनियाँ उन्हें ढूँढ़कर वहाँ से वापस ले आतीं। एक विशेष प्रश्न के उत्तर में माँ ने कहा था, 'मैं राधा हूँ।'[१]

श्रीमाँ सारदा पूँथी के रचयिता लिखते हैं –

कैनो हेथा आसिबो ना आमि जे श्रीराधा।
हृदि-बृन्दाबोने मार चोले ब्रोजोलीला।
रामकृष्णो होये कृष्णो कोरीतेछे खेला।।
कभू बा राधाते थाकि कभू सारदाते।
वृन्दाबोन-लाली हृदे चले दिने-राते।।[२]

अर्थात् मैं श्रीराधा हूँ, फिर मैं क्यों न वृन्दावन आऊँ! हृदय-वृन्दावन में श्रीमाँ की ब्रजलीला चलती रहती है। कृष्ण रामकृष्ण के रूप में खेल रहे हैं। कभी वे राधा के भाव में, तो कभी सारदा के भाव में रहती हैं, हृदय में दिन-रात वृन्दावन-लीला चलती रहती है।

वृन्दावन राधारानी का लीला क्षेत्र है और श्रीमाँ ही राधारानी का स्वरूप हैं। इस प्रकार श्रीमाँ सारदा का वृन्दावन आगमन कई पहलुओं से महत्त्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में श्रीमाँ के कई वक्तव्य और लोगों को होनेवाले दर्शन इसके प्रमाण हैं। इस लेख में हम उन पहलुओं पर विचार करने जा रहे हैं। ऐसी बहुत-सी घटनाएँ है, जिनके मध्यम से श्रीमाँ के स्वरूप के प्रकाश का प्रारम्भ भी देखेंगे।

श्रीरामकृष्ण देव की महासमाधि के पश्चात् माँ की स्थिति

शिव और शक्ति एक ही हैं, पर शिव के लीला से

अन्तर्धान हो जाने पर शक्ति की विरह-वेदना इतनी अधिक होती है कि वे भी लीला-संवरण करना चाहती हैं। माता सीता राम के विरह में त्रिजटा से कहती हैं –

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी।
मातु बिपति संगिनि तैं मोरी।।
तजौं देह करु बेगि उपाई।
दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई।।[३]

– सीताजी हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोलीं – हे माता !

तू मेरी विपत्ति की संगिनी है। जल्दी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सूकँ। विरह असह्य हो चला है, अब यह सहा नहीं जाता।

श्रीमाँ की भी यही मानसिक अवस्था थी। परन्तु श्रीरामकृष्ण देव का निर्देश कुछ और ही था। वास्तव में ठाकुर ने अपना कार्यभार श्रीमाँ को सौंप दिया था और उसके लिए एक विशेष घटना का होना आवश्यक था। ठाकुर की महासमाधि के पश्चात् ''इधर सन्ध्या-समय श्रीमाँ अपने शरीर से सारे आभूषण एक-एक करके निकालने लगीं। जब सोने के कंकण भी निकालने चलीं, तब श्रीरामकृष्ण ने गले की बीमारी के पूर्व के रूप में प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया और कहा, 'क्या मैं मर गया हूँ, जो तुम स्त्रियों के सौभाग्यचिह्न हाथों से निकाल रही हो?'' श्रीमाँ ने फिर कंकण नहीं उतारा। बलराम बाबू उनके लिये श्वेत वस्त्र खरीद लाए थे। श्रीमाँ को देने के लिए वह उन्होंने गोलाप-माँ के हाथों में दिया। पर गोलाप-माँ ने आतंक से कहा, ''अरे बाप रे, यह सादा कपड़ा उनके हाथों में कौन देने जाए?'' बाद में जब वे श्रीमाँ के पास गईं, तब देखा कि उन्होंने अपने हाथों से साड़ी का किनारा फाड़कर उसे पतला बना लिया है। तब से श्रीमाँ पतले लाल किनारे की ही साड़ी पहनने लगीं। श्रीरामकृष्ण की नित्यलीला का विराम नहीं है, और चिर-सधवा श्रीमाँ का भी उनसे यथार्थत: वियोग नहीं है।''[४]

''लेकिन यह दर्शन केवल अस्थायी है, पूर्व की भाँति, ठाकुर का दर्शन सदैव उपलब्ध नहीं होगा। उनकी सेवा करने का जो संतोष है, वह भी अब नहीं मिलेगा। वे फिर व्याकुल हो गयीं। इस समय को स्मरण करते हुए उन्होंने कहा था – हाथ, पैर, शरीर और मस्तिष्क सब सुन्न हो गये। भूख-प्यास की कोई वृत्ति नहीं, बैठी हूँ, तो बस बैठी ही हूँ। मुझे ठाकुर का प्रत्येक शब्द, प्रत्येक छोटे-बड़े कार्य का विवरण स्मरण होता था। मानो मेरे पास कोई दूसरा काम ही न हो।''

माता ठाकुरानी की स्थिति देखकर, कुछ भक्तों को यह आशंका होने लगी कि वह फिर कभी वापस साधारण स्थिति में नहीं आयेंगी, कभी किसी से बात नहीं करेंगी और अपना शेष जीवन एक स्थिर मूर्ति के रूप में बितायेंगी। परन्तु यह सम्भव इसलिए हो सका क्योंकि रामलाल बाबू और लक्ष्मी दीदी; दोनों ही माँ के स्नान, आहार आदि समस्त दैनन्दिन के कार्य कर दिया करते थे। जिस प्रकार एक स्नेहमयी माँ बच्चे के कहने के पूर्व ही उसका पालन-पोषण करती है, उसी प्रकार उन्होंने इस समय माँ की सेवा की।

माँ ने कहा, उन्होंने मुझे खाना खिलाया है और मेरा मुँह भी धोया है। वह मेरे मुँह के पास खाना लेकर बैठ जाता था और कहता था, खुड़ी माँ, तुम खाओ, नहीं तो कैसे बचोगी? और अन्त में हमें मातृहत्या का पाप लगेगा। कुछ खाना ग्रहण करो।

ठाकुर के अन्तर्धान होने से सब व्याकुल हैं, कौन किसको समझायेगा? कौन किसको ढांढस बँधायेगा? ठाकुर अपनी समस्त-शक्ति हरण करके अन्तर्धान हो गए हैं, आज सभी दिशाहीन हो गए हैं। फिर भी संतानगण माँ का हालचाल लिया करते थे, उनकी स्थिति के विषय में चिन्तित रहते थे, लेकिन उनके लिए इस प्रकार उनकी सेवा करना सम्भव नहीं हो पा रहा था।

ऐसी स्थिति में भी लोगों की आलोचनायें नहीं रुकतीं। जन्म-मृत्यु या अच्छा-बुरा तो संसार की दैनिक घटनाएँ हैं, फिर किसी व्यक्ति विशेष के लिये समाज के पारम्परिक रीति-रिवाज क्यों बदलें? कुछ लोग आश्चर्य करते हैं – यह क्या है, एक ब्राह्मण युवती अपने पति की मृत्यु के बाद भी हाथ में सोने की चूड़ी पहनती है, धारीदार साड़ी पहनती है, यह कैसा है ! हिन्दू समाज में यह प्रथा नहीं है। ऐसे प्रश्न कुछ भक्तों के मन में उठते हैं, लेकिन उनका कोई समाधान नहीं निकल पाता है। धीरे-धीरे यह बात माता ठाकुरानी के कानों में गई। लोगों का मत मानकर वे एक दिन जब वे अपने हाथ से सोने की चूड़ी खोल रही थीं, तो ठाकुर ने उनका हाथ पकड़कर कहा, ''क्या मेरी मृत्यु हुई है, जो तुम विधवा का वेश धारण करोगी? गौरी से पूछो, वह उन शास्त्रों को जानती है।

इतना कहकर ठाकुर पुन: अदृश्य हो गए। उस दिव्य स्पर्श से माँ के तन-मन में बिजली दौड़ गयी। वे पूर्ण आश्वस्त हुईं, नहीं, नहीं, वे हैं, अब भी हैं। वे मेरे पास ही हैं। सधवा वेश का परित्याग नहीं कर सकीं।[५]

माँ के सधवा वेश का परित्याग नहीं हुआ, परन्तु यह द्वन्द्व एक बार में ही समाप्त हो गया हो, ऐसा नहीं है। श्रीमाँ को इस प्रकार के विचार बाद में भी आये थे और श्रीरामकृष्ण देव ने भी विभिन्न समय पर ऐसे ही दर्शन देकर उन्हें मना

किया था। वृन्दावन से वापस कामारपुकुर जाने के बाद यह द्वन्द्व फिर होने लगा। क्योंकि वृन्दावन में तो सम्भवत: जाननेवाले कम ही थे, पर ससुराल में इन बातों को लेकर लोग क्या कहेंगे ऐसा विचार आना स्वाभाविक था। श्रीमाँ कहती हैं, ''जब वृन्दावन से लौटकर मैं कामारपुकुर में थी, तब इस डर से कि लोग क्या कहेंगे, मैंने हाथ से कंगन उतार डाले। मैं सोचती, जहाँ गंगाजी नहीं है, वहाँ कैसे रहूँगी? गंगास्नान के लिए जाने का विचार मन में आया। मेरे मन में सदैव से गंगाजी के प्रति झुकाव रहा है। एक दिन मैंने देखा कि सामने के रास्ते से (भूती की नहर की ओर से) आगे-आगे ठाकुर आ रहे हैं, उनके पीछे नरेन, बाबूराम, राखाल, बहुत से भक्त, कितने ही लोग आ रहे हैं! देखती क्या हूँ कि ठाकुर के पैरों से जल का फुहारा निकल रहा है और वह लहर मारता हुआ उनके आगे-आगे आ रहा है। मुझे लगा अरे, ये ही तो सब कुछ हैं, इनके पादपद्मों से ही तो गंगा निकली है। मैं झटपट रघुवीर मन्दिर के पास के जवाफूल के पेड़ से मुट्ठी-मुट्ठी भर फूल तोड़कर गंगाजी में चढ़ाने लगी। उसके बाद ठाकुर ने मुझसे कहा, 'तुम हाथ के कंगन मत निकालो। वैष्णव तन्त्र जानती हो तो?' मैं बोली, ''यह वैष्णव तन्त्र क्या है? मैं तो कुछ नहीं जानती।' वे बोले, 'आज शाम को गौरमणि (गौरी-माँ) आएगी, उससे सुन लेना। उसी दिन शाम को गौरदासी आयी। उससे सुना – 'स्वामी चिन्मय हैं।'[६] इस सम्बन्ध में कुछ अन्य विवरण भी प्राप्त हैं, जिनका उल्लेख युक्तिसंगत होगा। ''पति के देहावसान के पश्चात् उन्होंने काँच के आभूषण तोड़ दिये और सोने के आभूषण ले लिये। लोगों के पूछने पर उन्होंने कहा – ''अब मेरे पति अमर हो गए हैं, इसलिए मैने टूटा हुआ कांच फेंक दिया और सोने के आभूषण पहन लिए। ठाकुर की महासमाधि के पश्चात् माँ कंगन और धारीदार साड़ी को फेंकने जा रहीं थीं, लेकिन ठाकुर ने उन्हें दर्शन देकर रोक दिया। माँ ने एक बार वृन्दावन में और एक बार जयरामबाटी (वैकल्पिक रूप से कामारपुकुर) में, आभूषणों को त्यागकर श्वेत वस्त्र पहनने का संकल्प लिया, लेकिन ठाकुर ने उस बार भी रोक दिया।''[७] अन्ततोगत्वा चिरकाल तक माँ सधवा वेश धारण करती रहीं।

वृन्दावन यात्रा की भूमिका – ठाकुर ने कहा था, ''क्या मेरी मृत्यु हुई है, जो तुम विधवा का वेश धारण करोगी? गौरी से पूछो, वह उन शास्त्रों को जानती है। लेकिन, गौरी को कहाँ खोजें? माता ठकुरानी विचार करने लगीं कि वह तो वृन्दावन में है। नरेन्द्रनाथ आदि कुछ अन्तरंगों ने यह अनुभूति की कि माता ठाकुरानी के अवलम्बन से ही ठाकुर की भावधारा अखण्ड रहेगी और यह एक दिन पूरे विश्व को आप्लावित कर देगी। जन-कल्याण के लिए उनका जीवन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, इस कार्य में उनके आशीर्वाद और प्रत्यक्ष सहयोग की आवश्यकता है। अत: उनके दुखी मन को ठाकुर की प्रार्थनाओं से हटाकर विश्व-कल्याण की ओर आकर्षित करना होगा, अन्यथा वर्तमान अवस्था में उनके शरीर की रक्षा कठिन हो जायेगी। गृहस्थ और संन्यासी संतानों ने इस विषय पर चर्चा की और अनुभव किया कि यदि उन्हें तुरन्त ठाकुर के स्मृति-चिन्हों से भरे निवास से दूर, तीर्थ यात्रा पर ले जाया जाए, तो उनके अशान्त मन को शान्ति मिल सकती है। श्रीधाम वृन्दावन में यमुना नदी के समीप स्थित बलराम बसु के 'कालाबाबु कुञ्ज' में कुछ दिन निवास करें, यही सर्वसहमति हुई। माता ठाकुरानी ने वृन्दावन यात्रा के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया।''[८] यह श्रीमाँ की प्रथम वृन्दावन यात्रा थी।

वृन्दावन की यात्रा – ३० अगस्त की सन्ध्या को माँ ने वृन्दावन की यात्रा की। गोलाप-माँ, लक्ष्मी दीदी, मास्टर महाशय की पत्नी, पूजनीय योगीन महाराज, काली महाराज, तथा लाटू महाराज भी उनके साथ गये। वृन्दावन के पथ में माँ ने वाराणसी में तीन दिन निवास किया।[९] कुछ सेवकों की राय थी कि प्रयाग के त्रिवेणी में पुण्य स्नान के पश्चात् उन्हें वृन्दावन जाना चाहिए। लेकिन विश्वनाथ को देखने के बाद माँ के मन में केवल यही विचार आने लगा – जो राम हैं, वही कृष्ण हैं, और वे ही रामकृष्ण हैं। इसलिए वे अयोध्या में रामचन्द्रजी के दर्शन करके वृन्दावन जायेंगी और दूसरे तीर्थ वे बाद में जाएँगी। माँ के मन की इस इच्छा को जानकर योगानन्दजी ने उस समय प्रयाग की यात्रा स्थगित कर दी और वे अयोध्या की ओर चल पड़े।'[१०]

'काशी से सभी अयोध्या पहुँचे, और वहाँ एक दिन रहकर उन्होंने श्रीरामचन्द्र की लीलाभूमि का दर्शन किया। अयोध्या से वृन्दावन की यात्रा के मार्ग में श्रीमाँ ने अचिन्त्य रूप से श्रीरामकृष्ण के दर्शन पाए। श्रीमाँ की बाहु में श्रीरामकृष्ण का सुवर्ण-निर्मित इष्ट-कवच था। वे इसे अत्यन्त सावधानी से रखतीं और इसकी पूजा करती थीं। रेलगाड़ी में

वे अपनी बाहु खिड़की के पास ऊपर किए हुए लेटी थीं। श्रीरामकृष्ण ने खिड़की से मुँह बढ़ाकर कहा, 'कवच तो तुम्हारे साथ है, पर देखना खो न जाए।' माँ ने उसे तुरन्त निकाल उस टीन के बक्से में रख दिया, जिसमें श्रीमाँ द्वारा नित्य पूजित श्रीरामकृष्ण का फोटो था। तब से उन्होंने फिर कभी उस कवच को नहीं पहना। यथासमय वृन्दावन में पहुँच वे बलराम बाबू के यमुना तट पर स्थित पैतृक मन्दिर 'काला बाबू के कुंज' में ठहरीं।'[११] श्रीमाँ ने उस समय तो इष्ट-कवच को सँभालकर रखा था, पर कालान्तर में वह खो गया।

काला बाबू कुंज में निवास – श्रीराम जी के चरण कमलों का स्पर्श पाकर देवी अहिल्या पत्थर से नारी हुईं, वामन अवतार का तीसरा पग राजा बलि ने अपने मस्तक में धारण कर अपना जीवन धन्य कर लिया, श्रीकृष्ण ने कालिया नाग के सिर पर नृत्य कर अपने चरण-कमलों के स्पर्श का सौभाग्य प्रदान किया तथा ऐसे ही अवतारों के विभिन्न चरण-स्पर्श की घटनाएँ पुराणों में मिलती हैं, जिसे अत्यन्त शुभ माना जाता है। यूँ तो वृन्दावन धाम में भगवान श्रीकृष्ण ने नंगे पैरों चलकर गायें चराईं हैं, गोपियों के साथ खेले हैं, रास लीला की है तथा अनेक राक्षसों का वध किया है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं कि वृन्दावन का रज ब्रह्म है। कालाबाबू कुंज तो अपने सौभाग्य पर इठलाता ही होगा, क्योंकि वृन्दावन धाम में स्थित होने के साथ इसे श्रीमाँ सारदा देवी तथा श्रीरामकृष्ण देव के शिष्यों की चरण-धूलि लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रीमाँ सारदा पूँथीकार कालाबाबू कुञ्ज का उल्लेख करते हुए कहते हैं –

पर दिन आसिलेन मधु बृंदाबने।
काला बाबू कुंज तोथा जमुना पुलिने।।
बलराम बाबूदेर छिला एई बाटी।
सुरम्मो आलोय इहा अति परीपाटी।
शुनो भक्तगन भाबो एबे मने।
मार साथे आसियाछो मधु-बृंदाबने।
जल स्थले सेइ स्थान अति सुशोभित।
आछो ए नबिन तृण तथाय बिस्तृत।।[१२]

अर्थात् अगले दिन श्रीमाँ कालाबाबू कुञ्ज और यमुना के तट में मधु वृन्दावन आ गयीं। यह घर बलराम बाबू लोगों का था। यह बहुत सुन्दर और साफ-सुथरा था। सुनो, सुनो, भक्तों ऐसा सोचो कि आप माँ के साथ मधु-वृन्दावन में आये हैं। पानी और यह स्थान अत्यन्त सुन्दर है। आलय में नई घासें बिछी हैं।

श्रीमाँ दो बार वृन्दावन की यात्रा की थीं और दोनों ही समय उन्होंने काला बाबू कुंज में निवास किया था। पहली बार श्रीरामकृष्ण देव के देहत्याग के पश्चात् सन् १८८६ में वे आकर एक वर्ष रहीं तथा दूसरी बार लगभग दो महीने रहीं।

सन १८८६ में 'श्रीमाँ वृन्दावन में लगभग एक वर्ष तक रहीं। मास्टर महाशय की पत्नी तो एक महीने के पश्चात् प्रबल मलेरिया से पीड़ित हो पूज्य काली महाराज के साथ कलकत्ता लौट आईं। लाटू महाराज भी पाँच-छह महीने के बाद रामचन्द्र दत्त के घर की कोई दुर्घटना सुन कलकत्ता लौट आए।'[१३] 'बीच में एक बार लक्ष्मी दीदी, योगेन माँ तथा श्रीयुत योगानन्द स्वामी के साथ माँ हरिद्वार गयीं और वहाँ ब्रह्मकुण्ड में ठाकुर के नख तथा केश विसर्जित किये और जयपुर होते हुए वृन्दावन लौट आयीं। वहाँ वे कालाबाबू के कुंज में निवास करती थीं। वृन्दावन में एक वर्ष बिताने के बाद माँ कलकत्ते आयीं और कुछ दिन बलराम बाबू के घर बिताने के बाद कामारपुकुर चली गयीं।'[१४]

'१८९४ ई. के शेष भाग में कलकत्ता लौटने पर उनकी तीर्थभ्रमण की अभिलाषा हुई। अत: अपनी माता तथा भाइयों को जयरामबाटी से बुलवाकर उनके साथ वे काशी, वृन्दावन आदि के दर्शन के लिए प्रस्थान कीं। स्वामी योगानन्द,

गोलाप-माँ और योगीन-माँ भी साथ चलीं। वृन्दावन में 'कालाबाबू कुञ्ज' में सम्भवत: फाल्गुन और चैत्र दो महीने रहकर वे लोग कलकत्ता लौट आए।''[१५] 'माँ की बातें' नामक पुस्तक में भी इस प्रकार उल्लेख मिलता है – '१८९३ ई. के आषाढ़ माह में माँ बेलूड़ के नीलाम्बर मुखर्जी के किराये

शेष भाग पृष्ठ ३११ पर

छोटा जादूगर

श्रीमती गीतांजलि मुरारी

अनुवाद – स्वामी पद्माक्षानन्द और श्रीधर कृष्ण

(यह लघु-कथा नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, उनकी कहानियों की एक शृंखला है। इसमें उनके बचपन की घटनाओं की प्रस्तुति है। प्रत्येक कहानी वास्तविक घटनाओं का एक काल्पनिक पुनर्लेखन है। श्रीमती गीतांजलि मुरारी द्वारा लिखित ये कहानियाँ श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में लघुकथा के रूप में प्रकाशित हुई हैं। – सं.)

शिबू और हरि ने अपना सिर गाड़ी की खिड़की से बाहर निकाल लिया। दूर-दूर तक समुद्र झिलमिलाता था, विभिन्न आकार की नावें उसमें लंगर डाली हुई थीं। लेकिन एक जहाज अन्य जहाजों से बड़ा दिख रहा था। नरेन ने कहा, ''वह सिरापिस है।'' उसकी आँखें खुशी से चमक रही थीं। ''यह इंग्लैण्ड से आया है !''

इससे पहले कि गाड़ी रुकती, वे कूद पड़े और घाट की ओर भागे। बहुत से लोग साँप जैसी लम्बी कतार में खड़े थे।

नरेन ने एक आदमी से पूछा, ''सर ! 'क्या यह कतार युद्धपोत के लिए है?''

''हाँ,'' वह आदमी मुस्कराया। 'लेकिन यह केवल बाहर से देखने के लिए नहीं है ! यदि तुम अपनी बारी की प्रतीक्षा करोगे, तो तुम भी सिरापिस के भीतर जा सकोगे।

'यात्रा !' नरेन और उसके मित्रों ने खुशी-खुशी मुस्कुराहट से एक-दूसरे को देखा और कतार में शामिल हो गए।

वे काफी देर बाद गैंगवे पर पहुँचे और जैसे ही वे दूसरे लोगों के पीछे-पीछे जाने की कोशिश करने लगे, दो दरबानों ने उन्हें रोक लिया। दरबानों ने कहा, ''अपना अनुमति-पत्र दिखाओ।''

लड़कों ने एक दूसरे को आश्चर्य से देखा, ''क्या अनुमति-पत्र!''

एक दरबान ने कहा, ''यह जहाज महामहिम किंग एडवर्ड सप्तम का है। तुम बिना अनुमति-पत्र के इसे देखने के लिए अन्दर नहीं जा सकते ...''

''हमें अनुमति-पत्र कहाँ से मिलेगा?'' नरेन ने उससे पूछा।

दरबान ने कहा, ''क्या तुम सड़क के किनारे उस हरे भवन को देख रहे हो? वहाँ एक अधिकारी अनुमति पत्र जारी कर रहे हैं ... जाओ उनसे मिलो ...''

परन्तु जब नरेन उस भवन के प्रवेश द्वार पर पहुँचा, तो एक दरबान ने उनका रास्ता रोक दिया और अपने ऊँचे, लम्बे शरीर से नीचे देखा।

उसने पूछा, ''तीन छोटे लड़के यहाँ क्या कर रहे हो?''

शिबू और हरि नरेन के पीछे दौड़कर उसके कन्धे पर से झाँक रहे थे।

''बच्चों को अन्दर जाने की अनुमति नहीं है...''

नरेन ने बोलने के लिए अपना मुँह खोला, लेकिन दरबान ने अपनी छड़ी जमीन पर पटकते हुये कहा, नहीं बच्चे ... जाओ ... ''

''नरेन ...'' शिबू और हरि ने उसे हाथ से खींच लिया। 'चलो घर चलते हैं । कोई लाभ नहीं होगा।''

लेकिन नरेन ने सिर हिलाया, ''हम बिना भ्रमण किए वापस नहीं जायेंगे ...'' उसने भवन को देखा।

''क्या तुम उन सभी लोगों को बाहर प्रतीक्षा करते देख रहे हो?'' उसने ऊपर की मंजिल की ओर इशारा किया। 'लगता है कि अधिकारी उस कमरे में हैं ...''

''लेकिन वहाँ पहुँचने के लिए हमें मुख्य सीढ़ियों से ऊपर जाना होगा और वह विशाल दरबान हमें प्रवेश नहीं

करने देगा,'' शिबू ने निराश होकर कहा।

नरेन ने कहा, नहीं, अगर हमें कोई दूसरा रास्ता मिल जाए, तो तुमलोग मेरी यहाँ प्रतीक्षा करो। ''

नरेन उस भवन के पीछे भागा और खुशी से झूम उठा। एक घुमावदार सीढ़ी ऊपर की मंजिल तक जाती थी। वह तेजी से उस पर चढ़ गया और उसे वह कमरा मिला, जो उसने नीचे से देखा था।

नरेन ने 'कृपया क्षमा करें' यह कहते हुये एक छोटी-सी भीड़ को सरकाते हुए आगे बढ़ा और अन्त में उस कमरे में प्रवेश किया।

एक आकर्षक मेज के पीछे बैठे एक ब्रिटिश अधिकारी ने आश्चर्य से ऊपर देखा। उसने कठोर स्वर में पूछा, ''तुम क्या चाहते हो बेटा?'' नरेन ने विनम्रता से कहा, ''मैं और मेरे मित्र सिरापिस को देखने के लिए बहुत दूर से आए हैं। हमलोग बिना देखे घर नहीं लौटना चाहते हैं। क्या आप हमें अनुमति-पत्र देंगे?''

अफसर थोड़ा नरम हुआ। लड़के में डर का कोई निशान नहीं था और उसकी बड़ी-बड़ी भूरी आँखें बुद्धिमता से चमक रही थीं, उसके होठों पर एक प्यारी-सी मुस्कान थी।

अधिकारी ने सिर हिलाते हुये कहा, ''तुम आत्मविश्वासी बालक हो। ''मैं इसे पसन्द करता हूँ! तुम कितने लोग यात्रा करना चाहते हो?''

नरेन मुख्य सीढ़ी से नीचे चला गया, मुस्कुराया और द्वारपाल को उसकी बाँह पर थपथपाया। उसने अनुमति-पत्र लहराते हुए कहा, ''मैं अधिकारी से मिला।''

''लेकिन तुमने मुझे कैसे पार किया?'' दरबान विस्मय से चिल्लाया। ''मैं यहाँ इतने समय से खड़ा हूँ ...''

नरेन हँसा, ''ओह, मैं कुछ उपाय जानता हूँ। तुम देखो, मैं एक जादूगर हूँ !''

* * *

असहाय अनुभव करना बहुत बड़ी भूल है। किसी से सहायता मत लो। हम स्वयं ही अपने सहायक हैं। अगर हम अपनी मदद नहीं कर सकते, तो हमारी मदद करनेवाला कोई नहीं है। – स्वामी विवेकानन्द

पृष्ठ ३०९ का शेष भाग

के मकान में आयीं और माघ या फाल्गुन में कैलवार जाकर वहाँ दो माह बितायीं। वहाँ से अपनी माता तथा भ्राताओं के साथ वे पुन: वाराणसी तथा वृन्दावन गयी थीं। वहाँ से लौटकर मास्टर महाशय के कम्बुलिया टोला के मकान में लगभग एक माह बिताने के बाद माँ गाँव गयीं।[१६]

स्वामी अद्भुतानन्द जी महाराज कहते हैं 'वृन्दावन में माँ प्रतिदिन फूल देकर ठाकुर के चित्र की पूजा किया करती थीं और एक (अस्थि का) डिब्बा अपने मस्तक से छुलाकर रख देती थीं। एक दिन उस डिब्बे का स्पर्श उन्होंने हमारे सिर से भी कराया।[१७]

यूँ तो काला बाबू कुंज अनेक घटनाओं का साक्षी रहा है, परन्तु उनमें से कुछ ही लिपिबद्ध होने के कारण हम उनका उल्लेख यहाँ कर रहे हैं। **(क्रमशः)**

सन्दर्भ-सूत्र – १. श्रीमाँ सारदा देवी – ब्रह्मचारी अक्षयचैतन्य, पृ.६१ **२.** श्रीमाँ सारदा देवी पूँथी. पृ. ७८ **३.** श्रीरामचरितमानस, ५/११/१ **४.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. ११५ **५.** सारदा-रामकृष्ण पृ. १२१-१२२ **६.** माँ की बातें, पृ. ११८ **७.** स्वामी सारदानन्द जी के संस्मरण, पृ. २९६ **८.** सारदा-रामकृष्ण पृ. १२१-१२२ **९.** माँ की बातें, पृ. २०-२१ **१०.** सारदा-रामकृष्ण पृ. १२३ **११.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. ११७ **१२.** श्रीमाँ सारदा देवी पूँथी. पृ. ७७ **१३.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. ११९ **१४.** माँ की बातें, पृ. २०-२१ **१५.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. १४४ **१६.** माँ की बातें, पृ. २०-२१ **१७.** अद्भुत सन्त अद्भुतानन्द १७४

भगवान के नाम-जप का विज्ञान

स्वामी त्रिभुवनदास जी महाराज

जितेन्द्रियश्चात्मरतो बुधोऽसकृत्
सुनिश्चितं नाम हरेरनुत्तमम्।
अपारसंसारनिवारणक्षमं
समुच्चरेद् वैदिकमाचरन् सदा।।[१]

अर्थात् जितेन्द्रिय और परमात्मा में प्रीति करनेवाला बुद्धिमान व्यक्ति निर्धारित वैदिक कर्मों का सदा आचरण करते हुए घोर संसार-बन्धन का निवारण करने में समर्थ भगवान के सर्वश्रेष्ठ नाम का बारम्बार उच्चारण करे।

भगवन्नाम का उच्चारण – बुद्धिमान साधक को चाहिये कि वह अपनी अन्तर् और बाह्य सभी इन्द्रियों को निगृहीत करने का प्रयास करे, इसके लिये परमात्मा में प्रीति होना अत्यन्त आवश्यक है। संसारी जीव की विषयों में सहज प्रीति होती है। पूर्व विषय से उत्कृष्ट विषय में प्रीति होने पर पूर्व विषय में प्रीति समाप्त हो जाती है, यह सभी का अनुभूत विषय है। सर्वोत्कृष्ट वस्तु परमात्मा ही है, अत: उसमें जैसे-जैसे प्रीति होती जायेगी, वैसे-वैसे विषयों से विरति होती चली जायेगी, इस प्रकार आराध्य प्रभु में प्रीति होने पर विषयों में प्रीति समाप्त हो जायेगी। कर्मयोगी, ज्ञानयोगी और भक्तियोगी, इन सभी के लिये उक्त योगों के अंगरूप से नित्य-नैमित्तिक कर्म निर्धारित हैं, वे आजीवन अनुष्ठेय हैं। **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः –** ऐसा ईशावास्य श्रुति कहती है। सभी साधनों की सफलता का मूल है – भगवन्नाम जप। इसलिये उसका निरन्तर उच्चारण करना चाहिये। उच्चारण के बिना मानस जप करने पर आरम्भिक साधक का मन भटक जाता है और मन भगवन्नाम से हट जाता है, इसलिये ग्रन्थकार ने नाम का उच्चारण करने को कहा है। अभ्यास में परिपक्वता होने पर मानस जप भी किया जा सकता है। नाम जप सभी साधनों का उपकारक होने के साथ ही भक्तियोग का अन्तरंग साधन भी है।

भगवन्नाम-जप में श्रद्धा, प्रीति और तन्मयता की आवश्यकता – भगवान का नाम ही, नाम ही, नाम ही मेरा जीवन है, कलियुग में नाम को छोड़कर दूसरी गति नहीं है, नहीं है, नहीं है –

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।[२]

श्रीभगवान कहते हैं – निरन्तर मुझमें मन लगाये हुए, प्रेमपूर्वक भजन करनेवाले उन भक्तों को मैं तत्त्वज्ञान देता हूँ, जिसमें वे मुझे प्राप्त हो जाते हैं –

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।[३]
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।।
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ।
नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ।।
साधक नाम जपहिं लय लाएँ।
होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ।।
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ।।
सादर सुमिरन जे नर करहीं।
भव बारिधि गोपद इव तरहीं।।[४]

इन शास्त्रवचनों से यह अति स्पष्ट होता है कि योग, ध्यान आदि साधनों के बाधक इस कराल कलिकाल में साधक के लिये सकल सिद्धिप्रसाधक भगवन्नाम-जप ही है। **'भजतां प्रतिपूर्वकम्' 'सादर सुमिरन जे नर करहीं' 'साधक नाम जपहिं लय लाएँ'**, इन वाक्यों में 'प्रीति' 'लय' 'सादर' ये शब्द यह सिद्ध कर रहे हैं कि श्रद्धा-प्रेमपूर्वक मन लगाकर नाम-जप करने पर ही सिद्धि की प्राप्ति होती है, उसके बिना नाम-जप से नहीं होती। योगसूत्र में भी **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'**[५] स्पष्ट कहा है कि ईश्वर के नाम-जप के साथ उसके अर्थ की भावना भी करनी चाहिये।

नामापराध

शंका – भगवन्नाम-जप के साथ 'श्रद्धा-प्रीतिपूर्वक मन लगाकर करना चाहिये, यह शर्त लगाना ठीक नहीं है,

क्योंकि शास्त्रों में किसी प्रकार भी लिया गया भगवन्नाम सम्पूर्ण पापों का नाशक तथा यम-यातना से रक्षक और कल्याणकारक माना गया है। भागवत में कहा है कि संकेत, परिहास, गाने तथा पुकारने में भी वैकुण्ठनाथ का नाम-ग्रहण सम्पूर्ण पापों का नाश कर देता है। गिरते, फिसलते, टूटते, काटते, तपते, चोट खाते हुए पुरुष द्वारा परवश होकर 'हरि' ऐसा कहने पर भी वह यम-यातना नहीं भोगता –

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः।।
पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्।।[६]
भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।
बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं।
जन्म अनेक रचित अघ दहहीं।।[७]

यदि कहा जाये कि ये वचन नाम-जप में प्रवृत्ति कराने के लिये अर्थवाद मात्र हैं, इनका स्वार्थ में तात्पर्य नहीं है, तो यह कथन ठीक नहीं, क्योंकि नाम-जप के फल को अर्थवाद मानना नाम-अपराध माना गया है।

१. सन्तों की निन्दा करना।

२. नाम-माहात्म्य की कथाओं को असत् पुरुषों में कहना।

३. भगवान् विष्णु और शंकर में भेदबुद्धि करना।

४. गुरु के वचनों में अश्रद्धा करना।

५. अपौरुषेय वेद के वचनों में अश्रद्धा करना।

६. वेदमूलक अन्य शास्त्र के वचनों में अश्रद्धा करना।

७. नाम-जप के फल में अर्थवाद का भ्रम होना।

८. मेरे पास भगवन्नाम है, ऐसा अभिमान करके निषिद्ध कर्म का आचरण करना।

९. मेरे पास भगवन्नाम है, ऐसा अभिमान करके विहित कर्म का त्याग करना।

१०. नाम-जप को दूसरे धर्मों के समान मानना, ये दस नामापराध भगवान विष्णु और शंकर के नाम-जप में माने गये हैं –

सन्निन्दाऽसति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी-
रश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागो हि धर्मान्तरैः
साम्यं नाम्नि जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश।।

समाधान – कुछ विद्वानों का कहना है कि पूर्वोक्त भागवत के श्लोकों में ही, किसी प्रकार भी लिये गये भगवन्नाम को केवल पापनाशक तथा नरकयातना-रक्षक ही बताया है, कल्याण कारक नहीं। भागवत में अजामिल के प्रसंग में पूर्वोक्त श्लोक आये हैं। पुत्र के व्याज से लिये गये भगवन्नाम द्वारा अजामिल के भी केवल पापों का ही नाश हुआ, कल्याण तो हरिद्वार में जाकर साधना करने पर ही हुआ था। भागवत में स्पष्ट लिखा है कि पीछे के सभी बन्धनों से मुक्त हुआ अजामिल हरिद्वार गया, उस देवसदन तीर्थ में उसने योग का आश्रय लिया –

गंङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः।।
स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः।।[८]

इससे यही सिद्ध होता है कि श्रद्धा-प्रेमसहित किसी भी प्रकार लिया गया भगवन्नाम केवल पापनाशक तथा यम-यातना से रक्षक ही होता है। यदि ऐसा न माना जाये, तो शास्त्रों में जो श्रद्धा, प्रेम तथा तन्मयता का कथन है, उसकी सार्थकता सिद्ध न होगी तथा शास्त्रावचनों में विरोध उपस्थित होगा। अतः कुभाव से लिये गये नाम को भी कल्याणकारी कहनेवाले शास्त्रवचनों की संगति यही लगानी चाहिये कि प्रथम तो उससे उनके पाप का नाश ही होता है, जिससे शुद्ध अन्तःकरण होने पर वे श्रद्धा-प्रेमपूर्वक नाम जप करने लग जाते हैं और उनका भविष्य में कल्याण हो जाता है। ऐसा ही अजामिल का हुआ था।

अन्य विद्वानों का कहना है कि कुभाव आदि से एक बार भी लिया गया भगवन्नाम पूर्व के सभी पापों का नाश कर देता है, यदि व्यक्ति फिर पाप न करे, तो उसका कल्याण हो जाता है। पुनः-पुनः पाप करने पर पुनः-पुनः लिया गया नाम पाप का ही नाश करता रहेगा, उससे कल्याण नहीं होगा। अन्य विद्वानों का कहना है कि मरते समय कुभाव आदि से भी लिया गया नाम पाप का नाश तथा कल्याण; दोनों कर देता है, क्योंकि नाम ने अपनी शक्ति से सम्पूर्ण पापों का नाश कर दिया, नया पाप करे, ऐसा अवसर ही नहीं आया, अतः उसका कल्याण हो जाता है। अन्य विद्वानों का कहना है कि कुभाव आदि से लिया गया नाम सामान्य रूप से पाप का नाश करता है और श्रद्धा-प्रेमपूर्वक लिया

गया नाम विशेष रूप से पाप-नाश करता है। यदि आगे पाप न किया जाये और श्रद्धा-प्रेमपूर्वक नाम जप करता रहे, तो पाप-वासना का भी नाश होता है। इसके बाद भगवद्भक्ति का उदय होता है, तब कल्याण होता है।

कुछ नाम जप करनेवाले सच्चे साधकों के सम्मुख एक प्रसिद्ध सन्त के साथ उक्त विद्वानों के मतों पर विस्तारपूर्वक विचार कर रहा था। उनमें से सन्त स्वभाव के एक सच्चे साधक ने कहा –

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।
बारक नाम कहत जग जेऊ।
होत तरन तारन नर तेऊ।।[९]

जो मनुष्य आश्चर्य, भय, शोक और घायल होने आदि की स्थिति में भी किसी बहाने मेरा नाम-स्मरण करता है, वह परमगति को प्राप्त होता है –

आश्चर्ये वा भये शोके क्षते वा मम नाम यः।
व्याजेन वा स्मरेद्यस्तु स याति परमां गतिम्।।[१०]

इन शास्त्रवचनों में कुभाव आदि से एक बार भी लिया गया नाम पाप-नाशक ही नहीं, अपितु परमगति देने वाला बताया गया है। भगवन्नाम की इस महिमा में जरा भी सन्देह करना या जरा भी संकुचित अर्थ करना, तो नाम-महिमा में अर्थवाद की कल्पना करना ही कहा जायेगा। यह तो नामापराध ही होगा, क्योंकि दस नामापराधों में एक नामापराध है – **नाम्न्यर्थवादभ्रमः।'**

इससे तो नरक में ही जाना पड़ेगा। जो मनुष्य भगवान के नाम में अर्थवाद की सम्भावना करता है, वह मनुष्यों में महापापी है। निश्चय ही वह नरक में पड़ता है –

अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नरः।
स पापिष्ठो मनुष्याणां नरके पतति स्फुटम्।।

उनके इन वचनों को सुनकर उनकी भगवन्नामनिष्ठा से भीतर से प्रसन्न, बाहर से गम्भीर मुद्रापन्न होकर मैंने पूछा कि आपको बीस वर्षों से मैं भलीभाँति जानता हूँ। इन बीस वर्षों में आपने एक बार नहीं, किन्तु करोड़ों बार, कुभाव से नहीं, सद्भाव से भगवन्नाम लिया है। आप सत्य-सत्य बताइये कि क्या आपका कल्याण हो गया? दूसरे का कल्याण करने में आप समर्थ हो गये। मेरा भी कल्याण कर सकते हैं, तो करके दिखाइये। मेरे इस प्रकार कहने पर उन्होंने स्वीकार किया कि यह सत्य है कि बीस वर्षों में मैंने करोड़ों बार सद्भाव से नाम-जप किया है, तो भी दूसरों को तारने की बात तो दूर रही, मैं स्वयं भी अभी तक नहीं तर पाया। इसका एकमात्र कारण यह है कि जितनी श्रद्धा तथा तन्मयता से नाम-जप करना चाहिये, वैसा मैं नहीं कर पाया। सच्चे सरल भाव से कहे सदुत्तर को सुनकर प्रसन्न-मुद्रापन्न होकर मैंने कहा कि इस प्रकार का सदुत्तर देकर आपने अपने मुखारविन्द से ही यह स्वीकार कर लिया कि श्रद्धा-प्रेमपूर्वक तन्मयता से लिया गया नाम ही कल्याणकारी होता है। मेरे युक्तियुक्त वचन को सुनकर तथा अपनी अनुभूति से समर्थन पाकर मौन-आलम्बन द्वारा उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया।

पूर्वोक्त दस नामापराधों में नाम को अन्य धर्म कार्यों के समान मानना भी एक अपराध माना है – **धर्मान्तरैः साम्यम्।'** इस पर विचार करने से भी यही अर्थ निकलता है कि नाम पर सर्वोपरि 'श्रद्धा' होनी चाहिये। इससे तो यही सिद्ध होता है कि नाम जप में 'श्रद्धा' की शर्त लगाना या आवश्यकता बताना नामापराध नहीं, किन्तु श्रद्धा की शर्त न लगाना या आवश्यकता न बताना ही नामापराध है। श्रद्धापूर्वक नाम-जप करने वाले भी जो साधक खान-पान आदि के शास्त्रीय विधि-निषेध का पालन नहीं करते और ऐसा मानते हैं कि इनका पालन करना तो नाम को सर्वसमर्थ मानने में सन्देह करना है, नाममहिमा को घटाना है, उन साधकों से प्रार्थना है कि **'नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागो'** – अर्थात् नाम के बल पर शास्त्रनिषिद्ध आचरण करना और शास्त्रविहित आचरण का त्याग करना, इन दो नामापराधों पर ध्यान दें। इन दोनों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि नाम-जप को कल्याण का मुख्य साधन मानना तो ठीक है, किन्तु अन्य साधनों की अवहेलना से नामापराध बनकर नाम-महिमा घटती है, उनका आदर करने से नहीं। आदरणीय विश्वनाथ चक्रवर्ती, गिरधारीलाल शर्मा आदि विद्वानों ने भागवत (६।२) में नामापराधों पर विस्तार से विचार किया है, जिज्ञासुओं को उसे अवश्य देखना चाहिये।

अनेक बार नाम जप की आवश्यकता

शंका – भगवान के एक नाम में यही सामर्थ्य है कि उसका एक बार भी उच्चारण करने से मनुष्य तरणतारण हो जाता है।

बारक नाम कहत जग जेऊ।

होत तरन तारन नर तेऊ।।[११]

जिसने एक बार भी 'हरि:' इन दोनों अक्षरों का उच्चारण किया, उसने मोक्ष-प्राप्ति के लिये कमर कस ली –

सकृदुच्चरितं ये हरित्यक्षरद्वयम्।

बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति।।

अत: अनेक बार नाम जप की आवश्यकता है?

समाधान – पहले कहा जा चुका है कि जिन्होंने एक बार नहीं हजार-हजार बार लगातार वर्षों श्रद्धापूर्वक नाम का उच्चारण किया है, वे भी अपने अनुभव से यही कहते हैं कि दूसरों को तारने की बात ही क्या, स्वयं हम ही तर नहीं पाये। अत: अनुभव विरुद्ध होने से उक्त अर्धाली और लोक में कथित 'एक बार' का अर्थ मरणकाल में उच्चारण किया गया एक बार समझना चाहिये। दूसरी बात यह है कि यदि एक बार नाम के उच्चारण से ही सम्पूर्ण पापों का संहार और जीव का संसार-सागर से उद्धार हो जाता, तो अल्प महान पापों से उत्पन्न रोगों का नाश करने के लिये पाप की अल्पता-महत्ता के अनुसार मृत्युंजय-जप की न्यूनाधिक संख्या का विधान न किया जाता। गायत्री के २४ लाख मन्त्र का एक पुरश्चरण होता है, 'हरे राम' मन्त्रों के ३ करोड़ जप से ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट होकर मनुष्य मुक्त हो जाता है, ऐसा जो कलिसन्तरण उपनिषद् में कहा है, वह सब व्यर्थ हो जायेगा। **(क्रमशः)** (कल्याण से साभार)

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ११२ **२.** नारदपुराण पू.ख.४१।१५ **३.** गीता १०/१० **४.** रा.च.मा. १/२०/८ए ,१/२१/३-४,८, १/११८/४ **५.** योगसूत्र १।२८ **६.** श्रीमद्भागवत ६।२।१४-१५ **७.** रा०च०मा० १।२७।१, ११८/३ **८.** श्रीमद्भागवत ६/२/३९-४० **९.** रा.च.मा. १/२७।१,२/२१६/४ **१०.** ब्रह्मपुराण **११.** रा.च.मा. २/२१७/४

कविता

महाप्रभु जगन्नाथ

सदाराम सिन्हा 'स्नेही'

प्रेम से बोल रे मनुवा महाप्रभु जगन्नाथ ।
नित आनन्द घन बरसाये महाप्रभु जगन्नाथ ।।
पाप शाप त्रिताप नाशक महाप्रभु जगन्नाथ।
भक्त करते नित्य प्रति भजन महाप्रभु जगन्नाथ ।।
दुख दारुण दलते कलिकाल कलह कलुष हरते ।
भक्त भजन भाव से गाते महाप्रभु जगन्नाथ ।।
तुम कुछ करो न करो नित मन में केशव ध्यान धरो ।
तन मन जीवन पावन करे महाप्रभु जगन्नाथ ।।
जग संचालक सन्त सहायक है भक्ति प्रदायक ।
विश्व विधायक युगनायक महाप्रभु जगन्नाथ ।।
युग स्वामी बहुनामी पुरीधामी सर्वनामी ।
सदाराम अन्तर्यामी है महाप्रभु जगन्नाथ ।।

दिन में चार बार ध्यान करने का प्रयत्न करो, जैसा स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने निर्देश दिया है, प्रात:काल, मध्याह्न, सायंकाल और मध्यरात्रि। काल के इन क्षणों में प्रकृति शान्त हो जाती है तथा हमारे भीतर तथा बाहर भी आध्यात्मिक प्रवाह में परिवर्तन होता है। जो इन चारों समय ध्यान नहीं कर सकते, उन्हें कम से कम प्रात: और सायंकाल अवश्य ध्यान करना चाहिए।

हम दिन में कितनी बार भोजन करते हैं? यदि भौतिक आहार के लिए हमारे पास पर्याप्त समय है, तो आध्यात्मिक आहार के लिए, जो स्वस्थ मन के लिए अनिवार्य है, क्या हमें समय निकालने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए? भूखे होने पर हम दौड़कर भोजन पर झपटते हैं। हमें आध्यात्मिक आहार के लिए भी क्षुधातुर होना चाहिए। तब हम समय के अभाव की शिकायत नहीं करेंगे।

प्रात:काल ध्यान के लिए सर्वश्रेष्ठ समय है। रात को नींद से हमारी बहुत-सी स्मृतियाँ शान्त तथा दूर हो जाती हैं और हमारे लिए मन को एकाग्र करना उस समय आसान होता है।

– स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज

भजन एवं कविता

रामकृष्ण प्रभु तुम्हें प्रणाम

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

विश्वप्रेम के अनुपम गायक, रामकृष्ण प्रभु तुम्हें प्रणाम ।
सकल जगत में तुम्हीं व्याप्त हो, सृष्टि चलाते हो अविराम।।
भक्तजनों के तुम्हीं अधीश्वर, भक्तहृदय है तव निज धाम।
माया का आश्रय लेकर प्रभु, करते तुम्हीं सृष्टि का काम ।।
विश्व-ताप से दग्ध सभी जन, पाते तुममें ही विश्राम।
तुम ही उनके शान्तिप्रदाता, धर्म-प्रदर्शक तुम अभिराम ।।
नहीं चाहता धन-वैभव मैं, नहीं स्वर्गसुख का है काम ।
मेरी केवल यही कामना, मेरे उर बैठो अविराम ।।

युगावतार रामकृष्णदेव के प्रति

डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी, इटावा, (उ.प्र.)

आर्य संस्कृति और सभ्यता के उन्नायक।
सरस संस्कृति और सरस्वती के आराधक ।।
सतत साधनाशील तपस्वी और मनस्वी ।
भारत भू को कर कृतार्थ तुम बने यशस्वी ।।
भारत नभ मार्त्तण्ड, सरस जीवन उद्‌गाता।
भव्य भारती और भरतकुल भाग्य विधाता ।।
प्राच्य संस्कृति और हिन्दु दर्शन व्याख्याता ।।
निबिड़ातम दिग्भ्रान्त पथिक गन्तव्य प्रदाता ।।
नव आशामधुमास चतुर चातक के जलधर ।
श्रद्धाचित्त चकोर सोमवर्षी ओ हिमकर ।।
मानव को मनुजत्व दया का पाठ पढ़ाया ।
दर्शन के सरसोद्‌गारों को ग्राम्य गिरा में गाया ।।
फूँका नूतन मन्त्र क्रान्तिकारी वर्णों का ।
दिया संदेशा नवल प्रेम, करुणा, मैत्री का ।।
दूर असत् से रहे जगत, की यही कामना
सत्यं शिवं सुन्दरं संयुत भव्य भावना ।।
भवच्चरण कुवलय मकरन्द लोलुप मिलिन्द ।।
स्वीकृत हो शत-शत प्रणति विचक्षण विश्ववन्द्य ।।

गुरुदेव! खेवनहार हो

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

अज्ञान तिमिराच्छन्न जग में ज्योति के आधार हो ।
भवसिन्धु दुस्तर तरण हित गुरुदेव! खेवनहार हो ।।

निज शिष्य के मन की द्विधा को त्वरित हरते हो तुम्हीं,
कर-कंज रखकर शीश पर कल्याण करते हो तुम्हीं ।
संसार में रहते हुये संसार के तुम पार हो,
भवसिन्धु दुस्तर तरण हित गुरुदेव! खेवनहार हो ।।

मायाभ्रमित संसार को शुभमार्ग दिखलाते हो तुम,
भवबन्धनों के नाश हित गुरुमन्त्र सिखलाते हो तुम ।
भवरोग से पीड़ित मनुज-मन के परम उपचार हो,
भवसिन्धु दुस्तर तरण हित गुरुदेव! खेवनहार हो ।।

हरण करते भक्त के संतप्त मन के ताप को,
भस्म करते कर कृपा जन्मोंजनम के पाप को ।
तुम परम करुणा के सागर प्रेम के आगार हो,
भवसिन्धु दुस्तर तरण हित गुरुदेव! खेवनहार हो ।।

तेरे चरण आश्रित जनों को भय भला किस बात का,
करते निवारण स्वयं तुम सारे विपद आघात का।
उनके लिये तो स्वयं ही तुम मुक्ति के शुभ द्वार हो,
भवसिन्धु दुस्तर तरण हित गुरुदेव! खेवनहार हो ।।

है तेरे ही पादपद्मों का परम एक आसरा,
फेर दो निज कृपादृष्टि मुझ अकिंचन पर जरा ।
तुम ही जप-तप-भजन-साधन के चिरन्तन सार हो,
भवसिन्धु दुस्तर तरण हित गुरुदेव! खेवनहार हो ।।

अनुशासन और संयम से सामर्थ्य – संकट पर विजय की कथा

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

समर्थ रामदास स्वामी के कल्याणस्वामी नामक एक अत्यन्त प्रसिद्ध शिष्य थे। उनका नाम केवल निष्ठा के कारण ही नहीं, बल्कि अद्भुत शारीरिक और मानसिक सामर्थ्य के कारण भी स्मरण किया जाता है। वे कितने बलशाली, सामर्थ्यवान् थे, सज्जनगढ़ में स्थित विशाल हण्डे आज भी इसका साक्ष्य देते हैं। परन्तु उनके जीवन का एक प्रसंग ऐसा है, जो केवल शक्ति का नहीं, बल्कि अनुशासन, संयम और आन्तरिक धैर्य का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनके जीवन का एक अद्वितीय प्रसंग इस प्रकार है –

रामनवमी के पावन उत्सव पर चाफल में श्री की शोभायात्रा अत्यन्त भव्य रूप से निकला करती थी। प्रतिवर्ष हाथी को विविध आभूषणों से अलंकृत किया जाता और हौदे (हाथी की पीठ पर रखा जाने वाला सुसज्जित आसन या मण्डप, जिसमें राजा, संत या देव-प्रतिमा विराजमान होती है) में विराजमान होकर शोभायात्रा नगर में भ्रमण करती थी।

एक बार शोभायात्रा के दौरान हाथी उन्मत्त हो गया। वह 'ची-ची' की भीषण ध्वनि करता हुआ भीड़ में प्रवेश कर गया। समस्त जनसमुदाय भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगा। महावत ने अंकुश चलाने का प्रयत्न किया, परन्तु हाथी वश में न आया। उस शोभायात्रा में कल्याणस्वामी भी उपस्थित थे। समर्थ रामदास ने उनसे कहा – 'कल्याण! देखते क्या हो? हाथी को वश में करो।' इतना सुनते ही कल्याणस्वामी हाथी के सम्मुख खड़े हो गए। उनके मन में भय का स्थान नहीं था, केवल कर्तव्य की भावना थी। उन्होंने अपनी भुजाओं को कसकर थपथपाया और 'मारूँगा या मरूँगा'– इस अटल निश्चय के साथ हाथी की ओर अग्रसर हुए। हाथी अत्यन्त चंचल और क्रुद्ध था। वह मार्ग में आनेवाले वृक्षों को समूल उखाड़ फेंकने की सामर्थ्य रखता था। उसी प्रचण्ड बल से वह कल्याणस्वामी की ओर बढ़ा। 'अब कल्याण का क्या होगा?' – यह सोचकर सभी लोग स्तब्ध होकर दूर खड़े रहे। कल्याण और हाथी आमने-सामने आ गए। परन्तु कल्याणस्वामी विचलित नहीं हुए। हाथी ने अपनी सूँड से उन्हें लपेट लेने और आकाश में उछाल देने का प्रयास किया। परन्तु सूँड में उनकी कमर के स्थान पर उनका बायाँ हाथ आ फँसा। कल्याण ने उसकी परवाह न करते हुए तत्काल हाथ बढ़ाकर हाथी के दाँत को पकड़ लिया और उसके दाँत को पकड़कर समूल उखाड़ डाला। हाथी के दाँत भग्न हो गए। दाँत उखड़ते ही मानो उसका नासिका-छेदन हो गया हो, इस तीव्र वेदना और सन्ताप से वह और भी उग्र हो उठा। उसने अपनी सूँड का पाश और अधिक कस दिया। उसी क्षण कल्याण ने अपनी दाहिनी मुष्टि से हाथी के गण्डस्थल पर ऐसा प्रहार किया कि उसकी आँखों के आगे मानो असंख्य जुगनुओं की शृंखला चमक उठी हो। 'ची-ची' करता हुआ वह भूमि पर गिर पड़ा और उसका उन्माद शान्त हो गया।

रामनवमी की शोभायात्रा, सुसज्जित हाथी, उल्लासमय वातावरण और अचानक उन्मत्त हुआ हाथी। भीड़ भयभीत होकर भागती है। महावत असफल हो जाता है। उसी समय आदेश मिलता है – 'कल्याण! हाथी को वश में करो।' और एक व्यक्ति निर्भीक होकर आगे बढ़ता है। यह कल्याणस्वामी के केवल बाहरी पराक्रम या वीरता की कथा नहीं है; यह उनकी उस दीर्घकालीन साधना का परिणाम और साक्ष्य है, जिसमें नित्य सूर्यनमस्कार, कठोर संयम, नियमित व्यायाम और आत्मनियंत्रण सम्मिलित थे। शरीर में जो अद्भुत बल था, वह अनुशासन का संचय था; और मन में जो धैर्य था, वह निरन्तर अभ्यास (साधना) का फल था। इससे मनुष्य ऐसी शक्ति जागृत कर लेता है कि असम्भव प्रतीत होने वाली परिस्थितियाँ भी उसके आगे झुक जाती हैं। यह प्रसंग इस तथ्य का साक्षी है कि जब मनुष्य अपने जीवन को अनुशासन, अभ्यास और आत्मसंयम से गढ़ता है, तब वह विपरीत परिस्थितियों को भी परास्त कर सकता है। यह

कथा केवल अतीत की नहीं; यह आज के जीवन का भी जीवन्त रूपक है।

आधुनिक जीवन का 'उन्मत्त हाथी'

आज के युवाओं के समक्ष भी अनेक उन्मत्त हाथी खड़े हैं – अनुभवहीनता, प्रतिस्पर्धा का दबाव, असफलता का भय, डिजिटल व्यसन, नशे का व्यसन, चारित्रिक दुर्बलता, मानसिक तनाव, नैतिक दुविधाएँ, दिशाहीनता, भविष्य की अनिश्चितता, ये सब जीवन को अस्थिर बना देते हैं। अधिकांश लोग इन परिस्थितियों से बचना चाहते हैं। वे भागते हैं, टालते हैं, बहाने बनाते हैं, समझौता करते हैं। जो इनका सामना करता है, वही अपने जीवन की दिशा बदल पाता है।

संयम : शक्ति का वास्तविक स्रोत

कल्याणस्वामी का बल केवल मांसपेशियों का परिणाम नहीं था। वह दीर्घकालीन अनुशासन, नित्य अभ्यास और कठोर आत्मसंयम का फल था। जब युवा अपनी ऊर्जा को क्षणिक आकर्षणों में व्यर्थ नहीं गँवाता, बल्कि उसे अध्ययन, अभ्यास, स्वास्थ्य और लक्ष्य की ओर केन्द्रित करता है, तब वही ऊर्जा उसके व्यक्तित्व को तेजस्वी बना देती है। नियमित सूर्यनमस्कार, व्यायाम, इन्द्रियनिग्रह और सादगीपूर्ण जीवन, इनसे शरीर में ऊर्जा संचित होती है और मन में स्थिरता आती है। नियमित दिनचर्या, शारीरिक सुदृढ़ता, समय का सम्मान, तात्कालिक सुखों पर नियंत्रण, और मानसिक अनुशासन – ये केवल आदर्श वाक्य नहीं, बल्कि सफलता के आधारस्तम्भ हैं।

निर्णय लेने की दृढ़ता

जब हाथी सामने था, तब कल्याणस्वामी ने यह नहीं सोचा कि 'यदि मैं हार गया तो?' बल्कि यह निश्चय किया – ''मारूँगा या मरूँगा' अर्थात् या तो परिस्थिति बदलेगी, या मैं प्रयास करते हुए गिरूँगा।' यही दृढ़ता सफलता की जननी है। आज जीवन में भी यही साहस चाहिए। परीक्षा कठिन हो सकती है, करियर में संघर्ष हो सकता है, आर्थिक संकट आ सकता है, परन्तु यदि भीतर निर्णय अडिग है, तो बाहरी बाधाएँ अधिक समय तक टिक नहीं पातीं। जब कठिनाई सामने आए, तब यह सोचने में समय न गँवाएँ कि 'यदि मैं असफल हो गया तो?', बल्कि यह निश्चय करें – 'मैं पूरी शक्ति से प्रयास करूँगा।' यही दृष्टिकोण व्यक्ति को सामान्य से असाधारण बनाता है। दृढ़ संकल्प के सामने जीवन की कठोर परीक्षाएँ अधिक समय तक टिक नहीं पातीं।

मानसिक स्थिरता : संकट में सन्तुलन

संकट के समय मानसिक सन्तुलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जब हाथी ने कल्याणस्वामी को जकड़ा, तब भी वे विचलित नहीं हुए। संकट के क्षण में मन यदि सन्तुलित रहे, तो समाधान की सम्भावना बनी रहती है। सन्तुलित एवं स्थिर मन में ही समाधान खोजने की क्षमता उत्पन्न होती है। आधुनिक जीवन में भी – इंटरव्यू (साक्षात्कार) के समय, सार्वजनिक भाषण के समय, व्यापारिक जोखिम के समय, असफलता के क्षण में, जिसका मन सन्तुलित है, स्थिर है, वही सही निर्णय ले पाता है।

शक्ति और चरित्र का समन्वय

शक्ति और चरित्र का समन्वय जीवन को पूर्ण बनाता है। केवल शारीरिक बल पर्याप्त नहीं। यदि बल के साथ चरित्र न हो, तो वह विनाशकारी बन सकता है। और यदि केवल आदर्श हो, पर शक्ति न हो, तो वे प्रभावहीन रह जाते हैं। कल्याणस्वामी में दोनों का अद्भुत सन्तुलन था – शक्ति भी और उच्च आदर्श भी। इसलिए आज के युवाओं को सुदृढ़ शरीर, स्पष्ट लक्ष्य, संयमित जीवन, समाज के प्रति उत्तरदायित्व और उच्च नैतिकता, इन सबका सन्तुलित विकास करना होगा।

निष्कर्ष

यह प्रसंग हमें बताता है कि अनुशासन से आत्मविश्वास उत्पन्न होता है, संयम से ऊर्जा संचित होती है और निरन्तर अभ्यास (साधना) से असाधारण क्षमता विकसित होती है। जब ये तीनों एक साथ मिलते हैं, तब जीवन के उन्मत्त हाथी भी परास्त हो जाते हैं।

युवा मित्रो! अपने भीतर की शक्ति को पहचानो। अपने समय और ऊर्जा को व्यर्थ न जाने दो। शरीर को सुदृढ़ बनाओ, मन को संयमित करो, लक्ष्य को स्पष्ट करो। जब संकट सामने आए, तो भागो मत – अडिग होकर उसका सामना करो। इतिहास की यह घटना हमें आज भी यही सन्देश देती है – अनुशासन ही असली सामर्थ्य है और संयम ही वास्तविक विजय का मार्ग। ○○○

मलूकदास जी की जीव-जगत-अभिव्यक्ति

डॉ. कविता चौधरी

पूर्वाध्यक्ष, हिन्दी विभाग,

गुरु काशी विश्वविद्यालय, तलवण्डी, साबो बठिण्डा, पंजाब

सकल जगत के पदार्थों में, भूतमात्र में वह आत्मतत्त्व स्वयं ही अभिव्यक्त हो रहा है। वह भूतमात्र में है और भूतमात्र उसमें व्याप्त है, सब ओत प्रोत है। सर्वत्र, सब क्रियाओं के संचालन, कर्तृत्व, स्वयं क्रिया, क्रीड़ा, क्रीड़ास्थल और क्रीड़ाकर्ता सब कुछ वही है। इस आध्यात्मिक सत्य की सिद्धि के उपरान्त जितने भी भूत मात्र हैं, उनके साथ सम्यदृष्टियुक्त, सद्व्यवहार करना मनुष्य का सत्कर्तव्य है। अपने स्वार्थ, अन्धविश्वास, जिह्वा-स्वाद, अज्ञान तथा अन्य दूषणों के आधार पर किसी को दुख देना अथवा किसी का अहित करना या जीव-हिंसा करना अधर्म है, अन्याय है, पाप है। इसके लिये अत्याचारी को एक दिन अपने इस कुकृत्य का कुफल तो भोगना ही पड़ेगा। मलूक को ऐसे कृत्यों के प्रति आश्चर्य होता है, जो जीवहिंसा तक को भी धर्म कहते हैं। यदि हिंसा ही धर्म है, तो फिर अधर्म क्या रह गया और फिर हिंसक और अहिंसक का अन्तर ही कहाँ रहा? मलूक ने सभी भूतमात्र के साथ प्रेम, दया, करुणा, सद्भावना तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने को ही उत्तम कहा है।

मलूक के मन नाँही अहंकारा।
जहाँ तहाँ करतर पवारा।।
बेगि बँधायो नारा सोई।
तहँ बसि लोग सुखी सब होई।।[१]

आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक; दोनों ही रूपों में एक विशाल समाज की स्थिति बनती है। आध्यात्मिक सिद्धान्तों के अनुसार ज्ञानी पुरुष के लिये यह सम्पूर्ण विशाल समाज एकत्वपूर्ण होता है और यह सभी प्राणियों के साथ आत्मीय एकता का अनुभव करता है। ऐसे साधक पुरुष को वृक्ष की पत्ती, टहनी और पुष्पों के तोड़ने में भी कष्ट अनुभव होने लगता है। महात्मा मलूकदास ज्ञानी भक्त थे। उनके मतानुसार चरम सत्य सभी पदार्थों में व्याप्त है। वह वृक्ष शाखाओं तथा उनकी पत्तियों में भी विद्यमान है। पत्तियाँ चेतनयुक्त हैं। मलूक के अनुसार उनको भी कष्ट देना अनुचित है। जिनके अर्चनार्थ पत्तियों का प्रयोग किया जा रहा है, वे देव स्वयं उस पत्ती में व्याप्त हैं, तो यह एक प्रकार से हास्यास्पद कार्य ही है। सर्वत्र व्याप्त आत्मतत्त्व के सत्य रूप में अन्य पदार्थ कुछ है ही नहीं, फिर बाह्योपचार के द्वारा इस पूजा-पाठ का तो कोई सार ही नहीं।

कहत मलूक सुनो रे भोंदू,
अबिगत मूल बिसारा।।[२]

यह विश्व हिंसावृत्ति को प्रोत्साहित करनेवाला नहीं है। वरन् यह तो प्रेम का घर है। यह स्वयं कष्ट उठाकर और दूसरे को सुख पहुँचाकर ही प्राप्त हो सकता है। उनके विचारानुसार जो साधक सम्पूर्ण जीव मात्र के साथ आत्मीय एकता का अनुभव कर पाता है, वह सर्वानन्दमय होकर सदैव मुक्तानन्द अवस्था का आनन्द लेता है। उस अवस्था का रहस्य कहा नहीं जा सकता। वह तो अत्यन्त मधुर होता है।

दरस भये पट खोलो सहज भयो प्रकाश।
घट-घट परचै प्रगटो गावै सुधरादास।।[३]

मलूक ने विशाल समाज के साथ तादात्म्य स्थापित करने को उत्तम कर्तव्य बताया है। यह विश्व प्रेममय है। यह आनन्द

लीला धाम है। यहाँ निरानन्द उत्पन्न करना, यहाँ अव्यवस्था उत्पन्न करना है। सम्पूर्ण विशाल समाज को आध्यात्मिक एकत्व पूर्ण रूप में स्थित रहना है।

मारग सत लाख का रहा।
तब करतै विचार एक गहा।।
हंस रूप अंस एक जावै।
सो जीवन उद्धार करावै।
एक फरुष कों अग्या दीन्हा।
तब तिन जगहि पयाना कीन्हा।।[४]

छान्दोग्य उपनिषद् में ब्रह्म को आनन्द रूप कहा गया है। अखण्ड ब्रह्माण्ड में आनन्द है, ब्रह्म आनन्द रूप ही है, अतएव उसी की सेवा रूप जिज्ञासा करनी चाहिए – **यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति। भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति।।**[५]

बृहदारण्यकोपनिषद का कथन है कि समस्त भूतमात्र में जो आत्मतत्त्व व्याप्त है, हम उसी की प्रतीति के लिये ही तो अन्य पदार्थों के प्रति आकृष्ट होते हैं और वे हमें प्रिय लगते हैं – **आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।**[६]

प्रेमदर्शन का कथन है कि आत्मरूप से प्रत्येक प्राणी में आत्मतत्त्व अर्थात् भगवान विद्यमान है, अत: सर्वात्मा के प्रति प्रेम करना वस्तुत: भगवान की भक्ति ही है। ऐसी प्रेमरूप भक्ति करनेवाले को मुक्ति निश्चय ही मिलती है –

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते।[७]

प्रेम का पूर्ण प्रकाश करने हेतु ही सृष्टि-रचना का उद्देश्य है। अतएव समस्त प्राणी, भूतमात्र जड़-चेतन, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, पशु-पक्षी, ज्ञानी-अज्ञानी, सभी प्रेममय हैं। सबका जीवनादर्श आत्म-दर्शन है। आत्मीय एकता को, समस्त विश्व के साथ प्रेमपूर्वक सद्व्यहार करके ही प्राप्त किया जा सकता है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा है –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन:।।[८]

जो सभी भूतों की आत्मा में अपनी आत्मा को तथा अपने में सबकी आत्मा को एकत्वपूर्ण रूप में देखता है और सम्पूर्ण आत्मा को सर्वव्यापी अनन्त चेतन आत्मा में देखता है, वह समदर्शी साधक सर्वोच्च होता है। गीता के समान ही मलूक ने भी अनुभव किया और अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति करते हुए कहा कि हम सब में वही है, दूसरा कोई नहीं –

नाम होत त्रिस रैन को त्रिगुण दुनुक अमेल।
रूई रोम रज कन तें खीनो हरि गुण अविगति खेल।।[९]

सारांशत: मलूक जी ने आध्यात्मिक एकता की सिद्धि के लिए समस्त विश्व से प्रेम के साथ सद्व्यहार करने की बात कही है। संसार के सभी जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, मनुष्य, प्राणी मात्र सबमें आत्मतत्त्व व्याप्त है। इसीलिए सबका सामूहिक स्वरूप एक विशाल समाज है। इस विशाल समाज को भेद-भाव रहित एवं समत्वपूर्ण तथा समरसतापूर्ण होना चाहिए। केवल मानव समाज ही की पूर्ण स्थिति न हो, वरन् अन्य प्राणी मात्र एवं जड़ समूह को भी उसके साथ सम्मिलित करके सम्पूर्ण विशाल समाज की पूर्ण आध्यात्मिक एकता अथवा आत्मीय एकता पूर्ण स्थिति होनी चाहिए। महात्मा मलूकदास निष्काम कर्मयोगी के रूप में जीवनपर्यन्त समाजोपयोगी एवं लोक-कल्याण की दिशा में कार्यरत रहे। विचारसरणी में उन्होंने आध्यात्मिक क्षेत्र में जो सिद्धान्त निर्धारित किए, साधना क्षेत्र में उनकी अनुभूति प्राप्त की। उस अनुभूति के आधार पर उन्होंने समाज-कल्याण की दिशा में समाज के स्वरूप एवं संगठन सम्बन्धी विचारों को प्रतिपादित किया।

मानव समाज की इकाई व्यक्ति स्त्री और पुरुष के आचरण एवं कृत्यों के अनुसार ही समस्त समाज का स्वरूप स्थित होता है। समाज में यदि अधिकांश लोग चरित्रवान, संयमी, धार्मिक तथा सौहार्दपूर्ण होंगे, तो वह समाज उतना ही श्रेष्ठ, भद्र होगा। इसके विपरीत जिस मानव समाज में कुत्सित एवं दोषपूर्ण व्यक्तियों की संख्या अधिक होगी, वह समाज भी उसी अनुपात में कुत्सित श्रेणी का होगा। महात्मा मलूक ने सुशिष्ट एवं संयत समाज के संगठन के लिये व्यक्ति के संगठन के लिये व्यक्ति को सर्वोच्च चरित्रवान, संयमी, आदर्श, महात्मा, वैष्णव जन के रूप में प्रतिपादित किया।

उन्होंने समाज की दूसरी ईकाई स्त्री को भी पतिव्रत धर्म, पूर्ण चरित्रवान, गृहलक्ष्मी एवं सती के आदर्श पर चलनेवाली प्रतिपादित किया है। इन महात्माओं के विचारों की नारी त्यागमूर्ति, सहिष्णु, सात्त्विक प्रेमपूर्ण, सर्वगुण-सम्पन्ना, गृहस्थ जीवन में प्रवीण तथा सभी मानवोचित कर्तव्यों एवं अधिकारों को सुसम्पादित करनेवाली होनी चाहिए। ऐसे गुण-सम्पन्न पुरुषों तथा सर्वगुण विभूषित स्त्रियों के घर में सन्तान भी सुसंस्कारवान होनी चाहिए। चरित्रवान एवं संयमी

जीवनवाली सन्तान ही तो भावी समाज की निर्मात्री होती है। इसलिये माता-पिता और गुरु को संतान की शिक्षा-दीक्षा के प्रति सजग रहने की आवश्कता होती है। सन्त मलूक की एक साखी है –

हरी डार मत तोड़िए, लागै छूरा बान।
दास मलूका यों कहें, अपना-सा जिव जान।[१०]

विद्यार्थी जीवन प्रस्फुटन का समय होता है। इस जीवन में शिक्षक एवं शिक्षार्थी का पवित्रतम सम्बन्ध उच्चादर्शों को पूरा करनेवाला होना चाहिए। विद्यार्थी विद्योपार्जन के साथ-साथ चरित्रगठन के द्वारा अपने को विकासोन्मुख रखें, यही उनका सत्कर्तव्य है। इस प्रकार समाज में स्त्री-पुरुष द्वारा पूर्णता की प्राप्ति होना श्रेयस्कर है। सभी को समान रूप से उन्नति करने का पूर्ण अधिकार है। लिंग विभेदहीन समाज की रचना का दोनों महात्माओं का प्रयास था। धनी और निर्धन का भेद-भाव भी समाज में अनेकत्व का सृजन करके अव्यवस्था उत्पन्न करता है। अतएव धन का संचयन नहीं होना चाहिए। जिसको जितनी आवश्यकता हो, वह उपभोग करे और शेष को दूसरों के सहायतार्थ अर्पण कर दे। धनी निर्धन को आदर दे और सब परस्पर भाई-भाई की भाँति मिल-जुलकर वर्ग-विभेदहीन समाज की रचना में दत्तचित हों।

भारतीय वैदिक चिन्तन की यह आधारभूत स्थापना – **यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे एवं यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे**, हमारे सन्तों की सोच का भी आधार रही है। सन्त मलूक की वाणी में इसे देखा जा सकता है –

मुरदिस मेरा दिल दरियाई, दिलगहि अंदर खोजा।
जा अंदर में सत्तर काबा, मक्का तीसो रोजा।।[११]

साम्प्रदायिक विचारों के आधार पर भी समाज में विभेद-बुद्धि का प्रसार हो जाया करता है। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी, यहूदी, अस्पृश्य आदि अनेक जातियों के पारस्परिक व्यवहार में भिन्नता रहती है और उसी के कारण वैमनस्य, द्वेष, घृणा ईर्ष्या आदि दूषणों का प्रचार हो जाता है और आपसी अविश्वासों को लेकर झगड़े, साम्प्रदायिक झगड़े हो जाया करते हैं। विचारों में भिन्नता के कारण आध्यात्मिक चरम सत्य को भूल जाना उचित नहीं। आत्मतत्त्व सभी में व्याप्त है। वह हिन्दू में भी है और मुसलमान में भी और अन्य धर्मवालों में भी है। मूल तत्त्व के आधार पर सब एकत्वपूर्ण हैं, सभी परस्पर भाई-भाई हैं, इसलिये सबको एक दूसरे के कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। धर्म के नाम पर व्यर्थ पृथक्करण का कार्य अशोभनीय है। इस प्रकार सम्प्रदायविहीन समाज की रचना में सबको संलग्न रहकर समाज को सुसमाज बनाना चाहिए।

मौलिक रूप में धर्म एकत्वपूर्ण है। वह सबको धारण करनेवाला है, परन्तु बाह्याडम्बर से पारस्परिक वैमनस्य का प्रसार होता है। सत्य धर्म है, सबको संगठित करनेवाला है और सबके कल्याण के लिए कार्य करनेवाला है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, इन्द्रियनिग्रह आदि द्वारा संयमित जीवन की साधना करना ही सत्य धर्म का पालन करना है। इस सहज धर्म के पालन करनेवाले कभी परस्पर कलह नहीं कर सकते। इस प्रकार धर्म के निरपेक्ष समाज के संगठन की दिशा में प्रयत्नशील रहना सब का कर्तव्य है। समाज में अस्पृश्य विचारों के कारण भेद-विभेद हो जाता है। एक मनुष्य दूसरे को हेय, निम्न, अन्त्यज, अस्पृश्य आदि का नाम देकर उसके साथ अमानुषिक व्यवहार करने लगता है। उँचे और नीचे लोगों की पंक्तियाँ बन जाती हैं, जो समाज को परधीनता की ओर उन्मुख कर देती हैं।

सभी एक ही मिट्टी, जल और पवन के द्वारा निर्मित हैं। सभी आध्यात्मिक चेतना युक्त हैं। सबमें एक ही आत्मा व्याप्त है, इसलिए सभी एक हैं, भाई-भाई हैं। किसी के साथ भेद-भाव करना निन्दनीय है। सबको परस्पर मिल-जुलकर रहना चाहिए और वर्ण-विभेदहीन समाज की रचना करनी चाहिए। समाज में रुचि-विभिन्नता के कारण अनेक दुर्व्यसनों का प्रचलन हो जाता है, अनेक ऐसी प्रथाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जो समाज को अवनति की ओर ले जाती हैं। उन सभी कुप्रथाओं का परिहार करना समाज सेवकों का परम कर्तव्य है और समाज को सांसारिक एवं नैतिक रूप में परिशुद्ध करना सबका सत्कर्तव्य है। एक शुद्ध समाज की स्थापना करना श्रेयस्कर है।

सकल विश्व के नाम सब कहे मलूकादास।
भक्त प्रनाली वरनौ पूरन प्रेम प्रगास।।[१२]

जितने भी प्रकार के भेद-विभेद हैं, वे सभी लोप हो जायेंगे और उस समाज का व्यक्ति नित्य, मुक्त, शुद्ध, बुद्ध स्वरूप में स्थित एकत्वपूर्ण समाज का सुख भोगेगा। मलूक

शेष भाग पृष्ठ ३२४ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (६०)

(द्वादश अध्याय १२/८)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

ततो वारान्तरे चासौ हसति पुनरीश्वरः।
यदा कश्चित् पुमान रोगात् वर्तते प्राणसंकटे।।९४।।
क्रन्दन्ति ते भृशं तत्र सर्व-आत्मीय-बान्धवाः।
वैद्यो वदति मा भैषीरामयं शमयाम्यहम्।।९५।।

– उसके बाद ईश्वर एक बार पुनः हँसते हैं। जब किसी को कोई कठिन रोग हो जाता है और उसके प्राण संकट में पड़ जाते हैं, स्वजन परिजन सभी बहुत रो रहे हैं, तभी वैद्य आकर उसे कहता है, 'भय क्या है? मैं स्वस्थ कर दूँगा।'

नाभिजानाति मूढोऽयमतीव स चिकित्सकः।
को वै तं रक्षितुं शक्य ईश्वरो विनिहन्ति चेत्।।९६।।

यह वैद्य अत्यन्त मूर्ख है। वह यह नहीं जानता कि ईश्वर यदि मारते हैं, तो किसमें शक्ति है कि उसे बचा सके।

अर्जुनमेकदा प्राह श्रीकृष्णो भगवानिदम्।
अष्टानां सिद्धिनां पार्थ चेत्त्वयेऽकापि वर्तते।
भावो मे परमोयस्तं नाप्त्वं शक्यः धनञ्जय।।९७।।

– भगवान श्रीकृष्ण ने एकबार अर्जुन को कहा था – हे अर्जुन! अष्टसिद्धियों में से एक भी सिद्धि के रहने पर तुम मेरे उस परम भाव को प्राप्त नहीं कर सकते हो।

अतो यथार्थतो भक्ता ज्ञानिनश्च य एव हि।
न सिद्धिकामना कार्य्या तेषां जातु कथञ्चन।।९८।।

– इसलिए जो सच्चे भक्त और ज्ञानी हैं, उन्हें कभी भी किसी सिद्धि की इच्छा नहीं करनी चाहिये।

श्रीमहाराज उवाच

एकदा दर्शनाकांक्षी रामकृष्णजगद्गुरोः।
लक्ष्मीनारायणो नामा मरुवासी महाधनः।।
सत्संगी पुरुषः कश्चिद् दक्षिणेश्वरमाययौ।।९९।।

– श्रीमहाराज ने कहा – लक्ष्मीनारायण नामक एक मारवाड़ी सत्संगी और धनी व्यक्ति एक दिन श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने दक्षिणेश्वर आये।

मरूवासी च चात्रैव प्रभुना सह सज्जनः।
वेदान्तविषयालापं दीर्घकालं चकार ह।।१००।।

– इन मारवाड़ी सज्जन ने ठाकुर के साथ बहुत देर तक वेदान्त विषय पर चर्चा की।

धर्मविषयमालोच्य चातीव प्रभुना सह।
वेदान्तालोचनं तस्य श्रुत्वा प्रीतो बभूव सः।।१०१।।

– ठाकुर के साथ धार्मिक चर्चा कर और उनकी वेदान्त चर्चा सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुये।

अन्तरं धनाढ्यः स प्रस्थानसमयेऽवदत्।
किञ्चित्ते दातुमिच्छामि सेवार्थं भवतो ह्यहम्।
रौप्यदशसहस्राणि गृह्यन्तां कृपया प्रभो।।१०२।।

– अन्त में ठाकुर से विदा लेते समय उन मारवाड़ी ने कहा, मैं दस हजार रुपये आपकी सेवा के लिए देना चाहता हूँ। कृपा करके आप उसे ग्रहण कीजिए।

इदं श्रवणमात्राद्धि यातनाकातरः प्रभुः।
मूर्छागत इवाभूत् स मूर्ध्न्याहतो नरो यथा।।१०३।।

– ठाकुर यह बात सुनते ही, लोगों को सिर में आघात लगने पर जैसा होता है, वैसे ही वे मूर्छित जैसे हो गये।

श्रीरामकृष्ण उवाच

अतीव व्याकुलो भूत्वा बाल इव कियत्परम्।
सम्बोधयन् धनाढ्यं च ततस्तं स जगाद ह।।१०४।।

– कुछ देर बाद खिन्न होकर बालक के समान उन्होंने उस धनी को सम्बोधित कर कहा।

त्वमपसर रे दूरं सकाशान्मेऽविलम्बितम्।
मायाया मामरे दुष्ट दर्शयसि प्रलोभनम्।।१०५।।

– अरे दुष्ट! तुम अभी यहाँ से उठ जाओ। तुम हमको माया का प्रलोभन दिखाता है। **(क्रमशः)**

मधुकरी में मिला वेदान्त

स्वामी शशांकानन्द

मधुमक्खी का स्वभाव होता है कि वह सुंदर सुगन्धित फूलों से रस संग्रह करती है, गन्दगी या मल इत्यादि पर नहीं बैठती। इसीलिए शास्त्रों में कहते हैं – **मधु भुङ्क्ते च षटपदैः**। हमें ऐसे रहना चाहिए जैसे मधु-मक्खी। इसी दृष्टिकोण से मेरा मन सदा उन फूलों की खोज में रहता है, जिससे मुझे आध्यात्मिक रस रूपी मधु मिलता रहे। परन्तु शैशव काल से ही मैंने अपने को प्रभु-कृपा से ऐसा भाग्यवान पाया कि मुझे आध्यात्मिक पुष्पों के पास नहीं जाना पड़ा, अपितु, पुष्प ही मेरे पास चले आते थे।

एक के बाद एक घटनाएँ घटती गयीं, अनुभवों की पिटारी भरती गई, जीवन की घड़ियाँ बितती गयीं और अब जीवन के सन्ध्या काल में ऐसा लगता है कि मेरे जीवन के रंगमंच पर नाटक चलता रहा, एक के बाद एक दृश्य बदलता रहा और मैं एक अनजान द्रष्टा की भाँति देखता रहा और अपनी जिज्ञासा बुझाता रहा। अब सोचता हूँ कि इस नाटक का रचयिता और निर्देशक कौन है? जब ऐसा सोचता हूँ, तो मेरे मानस पटल पर एक दृश्य आ जाता है। मानों शिशु रूप में भगवान कृष्ण घुटनों के बल चलते हुए एक खम्भे के सामने रुके और जब उस खम्भे में अपनी परछाईं देखी, तो बहुत खुश हुए, उससे बातें करने लगे और उसके साथ खेलने लगे। कृष्ण जैसा करते वैसा ही परछाईं भी करती। इस दृश्य से मुझे स्पष्ट हो रहा है कि मेरे जीवन के नाटक के रचयिता एवं निर्देशक तो भगवान स्वयं हैं और मैं तो परछाईं मात्र हूँ।

यही तो जीव और ब्रह्म का भेद है। ब्रह्म ने इच्छा की – '**एकोऽहं बहुस्याम**'। ब्रह्म स्वयं जीव-जगत बना है। यह सृष्टि, स्थिति और प्रलय सभी उसका खेल मात्र है। जो कुछ भी सृष्टि में दिखाई देता है – जड़-चेतन, चर-अचर, जीव-जगत; सभी वही बना है, उसी का अभिनय है। श्रीरामकृष्ण देव ने एक बार देखा कि सारा जगत मोम का बना हुआ है। अर्थात् सारा जगत एक ही वस्तु है, किन्तु भिन्न-भिन्न रूप में दिखाई देता है, जैसे मिट्टी के खिलौने घोड़ा, हाथी, आदमी सभी भिन्न-भिन्न रूप होते हुए भी मिट्टी ही तो हैं। सोने के बने गहने हार, अंगूठी, चूड़ियाँ, नाक की नथ, कान के झुमके सभी सोना ही तो हैं, किन्तु रूप भिन्न हैं। ईशोपनिषद का पहला श्लोक ही इस सत्य की घोषणा करता है –

ईशावस्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

स्वामी विवेकानन्द जी ने इसका अर्थ बताया, Defy defy the world as you see; see the world as it is". अर्थात् जगत को ऐसा मत देखो, जैसा दिखाई देता है, बल्कि ऐसा देखो, जैसा वह है। भिन्नता में एकत्व की अनुभूति यही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। यही मानव की जीवन-यात्रा की अन्तिम अनुभूति है, जिसके बाद और कुछ जानना शेष नहीं रहता। जिस प्रकार स्वप्न भंग होने पर स्वप्न का अस्तित्व ही नहीं रहता, पर उसकी स्मृति रह जाती है, उसी प्रकार सारे जगत को ईश्वरीय अनुभव करने के बाद जीवन की समस्त घटनाएँ स्वप्न की भाँति मन में स्मृति रूप में रहती हैं, परन्तु आत्मा तो परमात्मा के साथ एक हो जाती है और उसका मन ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। ऐसे महापुरुष उपनिषदों की भाषा में कह उठते हैं –

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति
नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय।।

– मैंने उस महान पुरुष को जान लिया है, जो अन्धकार से परे सूर्य के सामान ज्योतिर्मय है। उसे जानकर मृत्यु को पार कर लेता है। और कोई दूसरा पथ नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता में ऐसे महापुरुषों को स्थितप्रज्ञ और समाधिस्थ कहा गया है। ऐसे ब्रह्म को प्राप्त किया हुए योगी ब्राह्मी स्थिति में स्थित होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है।

मेरे जीवन का सबसे मूल्यवान समय तो तभी उपस्थित हुआ था, जब अनायास ही मुझे एक ऐसे ही स्थितप्रज्ञ समाधिस्थ महापुरुष के अन्तिम ७ महीने उनकी सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। वे थे रामकृष्ण मठ एवं मिशन के वरिष्ठ संन्यासी, परम पूज्य प्रातःस्मरणीय स्वामी

अतुलानन्द जी महाराज। जगज्जननी माँ सारदा देवी उनकी दीक्षा गुरु थीं, स्वामी अभेदानन्द जी महाराज से संन्यास दीक्षा, स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज के साथ तपस्यारत रहे तथा ब्रह्मचारी अवस्था में युगनायक स्वामी विवेकानन्द जी के साथ न्यूयॉर्क में उनके सान्निध्य में रहे थे।

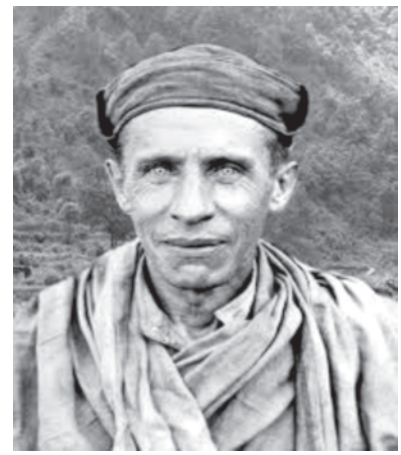
स्वामी अतुलानन्द जी महाराज

पूज्य स्वामी अतुलानन्द जी महाराज के जीवन में देखा जाता है कि ९७ वर्ष की आयु में क्षीणकाय, अति दुर्बल शरीर, एक आँख और नाक के ऊपर हिस्से में गहरा घाव (Rodent Ulcer), कमर में bed sore, श्वास कष्ट; फिर भी उनसे मिलने के लिए किसी आगन्तुक के आने पर चमकते हुए चेहरे पर अद्‌भुत मुस्कान के साथ हँसते हुए कहते थे, – "I am alright – मैं बिलकुल ठीक हूँ महाराज और वे आगन्तुक से उसका हालचाल पूँछते थे।

उनकी सेवा में मेरा प्रथम दिन ही था। जैसे ही मैंने उनके कमरे में प्रवेश किया, मैंने देखा कि महाराज जी लेटे हुए थे और उनके हाथ में एक रूमाल था, जो उनकी आँख और नाक के घाव से निकले हुए खून से पूरी तरह भीगा हुआ था। उसे देखकर मैं पूरी तरह घबरा गया था। परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि वे मुस्कराते हुए शान्त स्वरों में बोले, ''देखो कितना सुन्दर रंग है। ''मनुष्य को उन्मत्त बनानेवाली परिस्थिति में भी इस प्रकार आचरण देखकर यही समझ में आया कि वे शरीर से पूरी तरह पृथक् शुद्ध आत्मा से अभिन्न हो चुके थे।

शरीर या संसार के बारे में उनका कहना था, "Never it was, never it is, never it will be" – न यह कभी था, न है, न रहेगा।'' यह तो मरु-मरीचिका ही है। आत्मा, केवल आत्मा ही सत्य है और सब कुछ असत्य। इसी अवस्था में मैंने देखा कि चार घंटे महाराज ध्यान करते थे।

यहाँ तो मैंने एक आध घटना का ही वर्णन किया है। सात माह में नित्य प्रति मुझे उनके जीवन की बहुत घटनाएँ देखने की मिलीं और प्रत्येक घटना मेरे सामने श्रीमद्‌भगवद्‌गीता और उपनिषदों के गूढ़ तत्त्वों का अर्थ समझाती रही। सारांश में कहूँ, तो उनका जीवन अद्वैत ज्ञान का साक्षात् प्रदर्शन था। ○○○

पृष्ठ ३२१ का शेष भाग

दास के शब्दों में –

यौं विचारि जीव सों कहो मैं लिय अब यह नेम।

तजि हों कामादिक विषै तजौ न हरि पद प्रेम।।[१३]

मानव समाज के अतिरिक्त अन्य प्राणियों का भी समाज है। उस समाज से भी मनुष्य को अनेक लाभ होते हैं। मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग भी मनुष्य के लिये उपयोगी हैं तथा कृषि आदि कार्यों में महान सहायक होते हैं। इस प्रकार मानव समाज और अन्य प्राणी समाज मिलकर एक विशाल समाज की रचना करते हैं। यह विशाल समाज पारस्परिक एकता में बँधा हुआ है। हम तथा अन्य भूतमात्र एकत्वपूर्ण हैं। महात्मा मलूकदास ने इस प्रकार विश्वबन्धुत्व के आदर्श पर, आत्मवत् सर्वभूतेषु के अनुरूप समाज-रचना की दिशा में अपने विचार व्यक्त किए हैं। वे एक ऐसे आध्यात्मिक एकतापूर्ण समाज का चित्र बना गए हैं, जो सदैव व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करता रहेगा और इस समाज में भेदभाव का नाम नहीं रहेगा। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – **१.** डॉ. बलदेव वंशी, संपादक, संत मलूक ग्रंथावली, पृ. ५४ **२.** वही, पृ.३१५ **३.** वही, पृ.३१९ **४.** वही, पृ.३२१ **५.** छान्दोग्योपनिषद, ७/२३ **६.** बृहदारण्यकोपनिषद, २.४/४.५ **७.** प्रेमदर्शन, पृ. ४१ **८.** गीता, ६/२९ **९.** डॉ. बलदेव वंशी, संपादक, संत मलूक ग्रंथावली, पृ. २८९ **१०.** वही, पृ.४८ **११.** वही, पृ.४९ **१२.** वही, पृ. २८७ **१३.** वही, पृ. ११२ **१४.** वही, पृ.११२

नन्हीं स्कूबा डाइवर – थारागई आराधना

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, इस अंक में भी हम एक छोटी-सी बच्ची का पर्यावरण के प्रति प्रेम, लगन और परिश्रम की सच्ची कहानी पढ़ेंगे।

चेन्नई की रहनेवाली ८ वर्षीय थारागई आराधना **(Tharagai Aradhana)** एक नन्हीं पर्यावरण योद्धा हैं, जिन्होंने ५ साल की उम्र में स्कूबा डाइविंग सीखी और अब तक समुद्र से लगभग ६०० किलोग्राम से अधिक प्लास्टिक कचरा-निकालकर समुद्री जीवों की रक्षा कर रही हैं। अपने पिता से प्रेरित होकर वह समुद्र के नीचे नृत्य और सफाई अभियानों के द्वारा जागरूकता फैलाती है।

थारागई आराधना ने महज ८ साल की उम्र में प्लास्टिक प्रदूषण के खिलाफ जंग छेड़ दी है, उसने ५ साल की उम्र में गोताखोरी शुरू कर दी थी और अब समुद्र की गहराईयों में गोता लगाकर प्लास्टिक कचरा इकट्ठा करती है। समुद्र में एकत्र हुए प्लास्टिक के कारण समुद्री जीवों को हो रहे नुकसान को देखकर, उसने यह अभियान आरम्भ किया। उसका उद्देश्य लोगों को समुद्र को साफ रखने के लिये प्रेरित करना है। हाल ही में उसने समुद्र के नीचे भरतनाट्यम करके अपनी अनूठी शैली में पर्यावरण-संरक्षण का संदेश दिया। थारागई आराधना के पिताजी एक स्कूबा डाइविंग इंस्ट्रक्टर हैं। उन्होंने थारागई को प्रशिक्षत किया और इस नेक काम के लिये प्रेरित किया।

थारागई का दृढ़ संकल्प इस बात का प्रतीक है कि उम्र से कोई अन्तर नहीं पड़ता, अगर हम प्रकृति को बचाने के लिये कुछ करना चाहते हैं। जब हम अपने कार्य करने की भावना को परिवर्तित कर देते हैं, तब वह कार्य सेवा में रूपान्तरित हो जाता है, जैसा कि इस छोटी बच्ची ने करके दिखाया। लोग समुद्र तट और अन्य पर्यटन स्थल पर प्लास्टिक और अन्य कई कूड़े छोड़कर या फेंककर चले आते हैं, वहीं थारागई का पर्यावरण के प्रति स्वच्छता का प्रेम, उसे अन्य बच्चों से अलग बनाता है।

भारत की सबसे कम उम्र की **PADI** (प्रोफेशनल

एसोसिएशन ऑफ डाइविंग इंस्ट्रक्टर्स) प्रमाणित गोताखोर, आराधना चैन्नई की एक पर्यावरण कार्यकर्ता है, जो समुद्र-तटों और पानी के नीचे सफाई और समुद्री जीवन-संरक्षण की वकालत करती है। ३ अप्रैल, २०२४ को आराधना उनके पिता एस.बी.अरविंद थारुनश्री और निश्विक (एक सात वर्षीय साथी स्वयंसेवकों) ने समुद्री प्लास्टिक प्रदूषण के बारे में जागरूकता फैलाने के लिये श्रीलंका के थलाइमन्नार से भारत के धनुषकोटि तक तैराकी की। अन्य उपलब्धियों के अलावा, आराधना ने समुद्र बचाओ अभियान के अन्तर्गत ११ घंटे ३० मिनट तक तैराकी की है। अब तक, उसने अपने समुद्र तट और पानी के भीतर सफाई अभियानों में १२०० कि.ग्रा से अधिक प्लास्टिक एकत्र किया है। उसका पसंदीदा विषय स्कूल में खेल है, पर उसका पसंदीदा खेल कौन सा है? यह अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है।

यह कभी मत कहो कि मैं नहीं कर सकता, क्योंकि तुम अनन्त हो। – **स्वामी विवेकानन्द**

बच्चो, इससे हमें यह सीखने को मिलता है कि पर्यावरण को स्वच्छ रखना केवल थारागई आराधना की ही नहीं, बल्कि हम सभी का दायित्व और कर्तव्य है। ○○○

त्रिमूर्ति-वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(यह अद्भुत वन्दना गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित कवितावली के कवित्त छन्द – 'अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में विहरैं' की तर्ज पर रचित है। इस भावप्रवण विलक्षण वन्दना की प्रथम पंक्ति में श्रीरामकृष्णदेव की गुणावली, द्वितीय पंक्ति में श्रीमाँ सारदा देवी की गुणावली, तृतीय पंक्ति में स्वामी विवेकानन्द की गुणावली और चतुर्थ पंक्ति में भक्त की अभिलाषा का वर्णन है। – सं.)

जो निज हाथों से आम्रवृक्ष-रोपण अपने घर-द्वार करैं ।
जो स्वजन-मातु-पितु-सेवा से, सबको उल्लसित अपार करैं ।
जो पुरजन-परिजन-निखिल विश्व तक, सेवा-हस्त-प्रसार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।७६।।
जो दक्षिणेश्वर में समीपस्थ, यदुमल्लिक बाग-विहार करैं ।
जो नौबतघर में तपोसाधना, सेवा विविध प्रकार करैं ।
जो तर्क-विवेक-पवित्र चरित से, गुरु को मुग्ध अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।७७।।
जो परमहंस निज जननी के संग, शुभ गंगा तट-वास करैं ।
जो पति-निर्दिष्ट साधना-सेवा, के सब कर्म सहास करैं ।।
जो गुरु-प्रदत्त दायित्व-भार-निवर्हन सटीक प्रकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।७८।।
जो मधुरकंठ से राम प्रसाद का, भजन-गान बहुबार करैं ।
जो नित्य ध्यान-जप सहित, भक्त-सेवा के कर्म उदार करैं ।
जो धर्मशास्त्र, संगीत, ध्यान में, मन को दक्ष अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।७९।।
जो दक्षिणेश्वर में माँ काली की , पूजा विविध प्रकार करैं।
जो मातृभाव की सहज साधना, से सेवा-सत्कार करैं ।
जो नर-नारायण सेवा का, आदर्श उदार प्रचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।८०।।
जो युवा काल में विविध मतों का, साधन निष्ठाचार करैं ।
जो शुद्ध भाव से जगप्रपंच के, सेवा-कर्म उदार करैं।
जो जग कल्याण-साधना में ही, अर्पित निखिलाचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।८१।।
जो काशीपुर में भक्तकल्पतरु, दिव्य चेतना-दान करैं ।
जो मातृ-प्रेम-आकर्षण-रस से, निर्मल निज संतान करैं ।
जो परिव्राजक हो शरतगुप्त को, प्रथम शिष्य स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।८२।।
जो ईश्वर दर्शन-व्याकुलता को, जीवन-निधि स्वीकार करैं ।
जो तपो-साधना-सेवा से, ईश्वरमय अखिलाचार करैं ।
जो परसेवा कर्मों में सबका, ही आह्वान उदार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।८३।।
जो पवहारी बाबा कुटिया में, चित्र रूप में वास करैं ।
जो वधू सारदा, दक्षिणेश्वर, पदयात्रा कठिन, सहास करैं ।
जो गाजीपुर में गुरुवर, भाव-दरश बीसाधिक बार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।८४।।
जो विजय कृष्ण को ढाका में, दर्शन से धन्य अपार करैं ।
जो मातृ-प्रेम से ही संतानों, के मन पर अधिकार करैं ।
जो विद्याव्यसनी ध्यानशक्ति से, चकित सकल संसार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।८५।।
जो भांजे हृदयराम के संग, शुभ पूजनकर्म उदार करैं ।
जो निज संगिनी नारियों के प्रति, प्रेम-दुलार अपार करैं ।
जो गान-माधुरी से गुरुवर को, भावाविष्ट अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।८६।।
जो पंचवटी में ध्यान-साधना, के शुभकार्य उदार करैं ।
जो भोजन-पाक-कर्म से भक्तों, की सेवा-सत्कार करैं ।
जो पाक-कला, संगीत-ज्ञान से, सबको मुग्ध अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।८७।।
जो प्रथम मिलन में गानमाधुरी, सुन नरेन्द्र-पहचान करैं ।
जो कामारपुकुर में वधूसुलभ सब, कर्म विगत अभिमान करैं ।
जो युवाकाल में ही ईश्वर की, खोज विशेष प्रकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।८८।।
जो बाल गदाधर चीनू शंखारी, से तर्क-विचार करैं ।
जो भगिनी निवेदिता के संग, आत्मीय प्रेम व्यवहार करैं ।
जो दीर्घकाल जलयानारूढ़ा, होकर विश्व-विहार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।८९।।
जो भजन-गान से भक्तों में, जीवन-रस का संचार करैं ।
जो सबके ही प्रति दया-प्रेम का, मातृसुलभ आचार करैं ।
जो निर्भयता-बल-साहस का, जयगान विशेष प्रकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।९०।।

गीतातत्त्व-चिन्तन

पन्द्रहवाँ अध्याय (१५/४)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १५वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

श्रोत्रं चक्षु स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठायं मनश्चायं विषयानुपसेवते।।९।।

अयम् श्रोत्रम् चक्षुः च स्पर्शनम् (यह जीवात्मा श्रोत चक्षु और त्वचा) च रसनम् घ्राण च मनः (तथा रसना घ्राण और मन को) अधिष्ठाय एव विषयान् उपसेवते (आश्रय करके ही विषयों का सेवन करता है)।

"यह जीवात्मा श्रोत्र चक्षु और त्वचा तथा रसना घ्राण और मन को आश्रय करके ही विषयों का सेवन करता है।"

यह सब जीव कैसे करता है? कहते हैं, श्रोत्र कान से सुनना, घ्राण-नाक से सूँघना, चक्षु-नेत्र से देखना, स्पर्श-त्वचा से स्पर्श करना, रसना-जिह्वा से रस लेना, और मन ऐसे छहों को अधिष्ठान बनाकर के अधिष्ठायं मनश्चायं, मानो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, श्रवण और मनन इनका आश्रय लेकर विषयानुपसेवते, विषयों का भोग करता है, जीव इन्द्रियों के माध्यम से ये सब आनन्द लेता है। यह जो जीव है, इन्द्रियों के माध्यम से ही तो भोग करेगा। यदि मैं रूप का भोग करना चाहूँ, तो उसके लिये आँखें चाहिये, कान नहीं। सुन्दर संगीत का सुनना केवल कान से ही होगा। यदि मेरी आँखें, नष्ट हो जायें, तो मैं रूप का भोग नहीं कर सकता। यदि मैं बहरा हो जाऊँ, तो मैं संगीत का भोग नहीं कर सकता। यदि मुझे लकवा मार जाये, तो मुझे स्पर्श-शक्ति का आनन्द नहीं मिलता। यदि मेरी घ्राण शक्ति कुंठित हो जाये, तो मैं सुगन्ध का आनन्द नहीं ले सकता। यदि मेरी जीभ रोगग्रस्त हो जाय, तो मैं रस का आनन्द नहीं ले सकता। इसलिये कहा कि ये पाँचों इन्द्रियों और छठा मन को अधिष्ठान बना करके इनका आधार लेकर, इनको माध्यम बनाकर के यह जीव विषयों का भोग करता है।

ज्ञानी विवेकशील जन ही जीव का वास्तविक स्वरूप पहचानते हैं

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।१०।।

उत्क्रामन्तम् वा स्थितम् वा (शरीर को छोड़कर जाते हुए या शरीर में स्थित रहते हुए) भुञ्जानम् गुणान्वितम् (या विषयों को भोगते हुए या तीनों गुणों से युक्त रहते हुए) अपि विमूढाः न अनुपश्यन्ति (भी अज्ञानीजन उसे नहीं जानते) ज्ञानचक्षुषः पश्यन्ति (केवल ज्ञानरूपी नेत्रोंवाले विवेकी ही जानते हैं)।

"शरीर को छोड़कर जाते हुए या शरीर में स्थित रहते हुए या विषयों को भोगते हुए या तीनों गुणों से युक्त रहते हुए भी अज्ञानीजन उसे नहीं जानते, केवल ज्ञानरूपी नेत्रोंवाले विवेकी ही जानते हैं।"

उत्क्रामन्तं – शरीर से बाहर निकल गया जीव, स्थितं – जिस समय स्थित है शरीर के भीतर में, वापि माने दोनों – चाहे शरीर से वह बाहर निकलता हो या शरीर के भीतर में स्थित हो। भुञ्जानं – भोग करता हो, वा गुणान्वितं – चाहे वह गुणों से युक्त दिखाई देता हो। गुण का अर्थ है त्रिगुण, जिसकी चर्चा हमने पिछले अध्यायों में

की। सत्त्वगुण, रजोगुण और उसी प्रकार तमोगुण, इन तीनों गुणों से युक्त दिखाई देता हो। उसे अज्ञानी जन नहीं जानते, केवल ज्ञानरूप नेत्रोंवाले विवेकशील ज्ञानी ही जानते हैं, जो प्रतिबिम्ब को देखकर बिम्ब को जान लेते हैं।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः।।११।।

यतन्त: योगिन: आत्मनि (यत्न करनेवाले योगीजन अपने हृदय में) अवस्थितम् एनम् पश्यन्ति (स्थित इस आत्मा को जानते हैं) च अकृतात्मान: अचेतस: (किन्तु जिन्होंने अपने अन्त:करण को शुद्ध नहीं किया, ऐसे अज्ञानीजन) यतन्त: अपि एनम् न पश्यन्ति (यत्न करने पर भी इस आत्मा को नहीं जानते)।

''यत्न करनेवाले योगीजन अपने हृदय में स्थित इस आत्मा को जानते हैं, किन्तु जिन्होंने अपने अन्त:करण को शुद्ध नहीं किया, ऐसे अज्ञानीजन यत्न करने पर भी इस आत्मा को नहीं जानते।''

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।१२।।

आदित्यगतम् यत् तेज: (सूर्य में स्थित जो तेज) अखिलम् जगत् भासयते (सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है) च यत् चन्द्रमसि यत् अग्नौ (तथा जो तेज चन्द्रमा में है, जो अग्नि में है) तत् मामकम् तेज: विद्धि: (उसको तू मेरा ही तेज जान)।

''सूर्य में स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमा में है, जो अग्नि में है, उसको तू मेरा ही तेज जान।''

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।।१३।।

च अहम् गाम् आविश्य (और मैं पृथ्वी में प्रवेश करके) ओजसा भूतानि धारयामि (अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूँ) च रसात्मक: सोम: भूत्वा (और रसस्वरूप चन्द्रमा होकर) सर्वा: ओषधी: पुष्णामि (सम्पूर्ण ओषधियों को पुष्ट करता हूँ)।''

''और मैं पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूँ और रसस्वरूप चन्द्रमा होकर सम्पूर्ण ओषधियों को पुष्ट करता हूँ।''

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।१४।।

अहम् प्राणिनाम् देहम् आश्रित: (मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित) प्राणापानसमायुक्त: वैश्वानर: भूत्वा (प्राण और अपान से संयुक्त वैश्वानर अग्नि होकर) चतुर्विधम् अन्नम् पचामि (चार प्रकार के अन्नों को पचाता हूँ)।

''मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित प्राण और अपान से संयुक्त वैश्वानर अग्नि होकर चार प्रकार के अन्नों को पचाता हूँ।''

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मतः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।१५।।

अहम् सर्वस्य हृदि सन्निविष्ट: (मैं ही सब प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ) च मत्ता: स्मृति ज्ञानम् च अपोहनम् (तथा मुझसे ही स्मृति ज्ञान और अपोहन है) च सर्वै: वेदै: (और सब वेदों द्वारा) अहम् एव वेद्य: (मैं ही जानने योग्य हूँ) वेदान्तकृत् च वेदवित् अहम् एव (वेदान्त का कर्ता और वेदों को जाननेवाला भी मैं ही हूँ)।

''मैं ही सब प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति ज्ञान और अपोहन है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ, वेदान्त का कर्ता और वेदों को जाननेवाला भी मैं ही हूँ।''

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।१६।।

लोके क्षर: च अक्षर: (इस संसार में नाशवान) एव इमौ द्वौ पुरुषौ (और अविनाशी ये दो प्रकार के पुरुष हैं) सर्वाणि भूतानि क्षर: (इनमें सम्पूर्ण भूतों के शरीर नाशवान) च कूटस्थ: अक्षर: उच्यते (और जीवात्मा अविनाशी कहा गया है)।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।१७।।

उत्तम: पुरुष: तु अन्य: (उत्तम पुरुष तो अन्य ही है) य: लोकत्रयम् आविश्य (जो तीनों लोकों में प्रवेश करके) बिभर्ति (सबका पोषण करता है) अव्यय: ईश्वर: परमात्मा इति उदाहृत: (अविनाशी ईश्वर परमात्मा इस प्रकार कहा गया है)।

''उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकों में प्रवेश

करके सबका पोषण करता है, अविनाशी ईश्वर परमात्मा इस प्रकार कहा गया है।''

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।१८।।

''इस संसार में नाशवान और अविनाशी; ये दो प्रकार के पुरुष हैं, इनमें सम्पूर्ण भूतों के शरीर को नाशवान और जीवात्मा अविनाशी कहा गया है।''

यस्मात् अहम् क्षरम् अतीतः (क्योंकि मैं नाशवान क्षेत्र से अतीत हूँ) च अक्षरात् अपि उत्तमः (और अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूँ) अतः लोके च वेदे (इसलिए इस लोक में और वेद में भी) पुरुषोत्तमः प्रथितः अस्मि (पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ)।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्। स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।।१९।।

''क्योंकि मैं नाशवान क्षेत्र से अतीत हूँ और अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूँ। इसलिए इस लोक में और वेद में भी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ।''

भारत (हे भारत!) यः असम्मूढः माम् एवम् (जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार) पुरुषोत्तमम् जानाति (पुरुषोत्तम जानता है) सः सर्ववित् सर्वभावेन (वह सर्वज्ञ सब प्रकार से) माम् भजति (मुझको ही भजता है)।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ। एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।।२०।।

''हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ सब प्रकार से मुझको ही भजता है।''

अनघ भारत (हे निष्पाप अर्जुन!) इति इदम् गुह्यतमम् शास्त्रम् (इस प्रकार यह अति गोपनीय शास्त्र) मया उक्तम् (मेरे द्वारा कहा गया) एतत् बुद्ध्वा (इसको तत्त्व से जानकर) बुद्धिमान् च कृतकृत्यः स्यात् (मनुष्य बुद्धिमान और कृतार्थ हो जाता है)।

''हे निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार यह अति गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया। इसको तत्त्व से जानकर मनुष्य बुद्धिमान और कृतार्थ हो जाता है।'' **(क्रमशः)**

प्रश्न – क्या गुरु के बिना नहीं होता?

उत्तर – मैं तो समझता हूँ, नहीं, किसी भी हालत में नहीं। गुरु वे ही हैं, जो किसी निर्दिष्ट मन्त्र के द्वारा इष्ट की प्राप्ति का मार्ग दिखा देते हैं। गुरु एक ही होते हैं, उपगुरु अनेक हो सकते हैं। सद्गुरु बतला देते हैं, इस तरह से साधना करो और सत्संग करो। पहले नियम था, गुरुगृह में वास। गुरु शिष्य का ध्यान रखते थे, शिष्य भी गुरु-सेवा करते थे। शिष्य के गलत मार्ग पर जाने से गुरु उसे ठीक पथ पर वापस ले आते थे। इसीलिए ब्रह्मवित् या सिद्ध महापुरुष के सिवाय दूसरा गुरु करना ठीक नहीं।

गुरु के प्रति मनुष्य-बुद्धि नहीं रखनी चाहिए। सोचना चाहिए मानो उनका शरीर मन्दिर है और उसके भीतर भगवान् ही विराजमान हैं। इस तरह गुरु-सेवा करते-करते गुरु के प्रति प्रेमाभक्ति होती है। गुरु के प्रति यह प्रेमाभक्ति ही बाद में फिर भगवान की ओर मोड़ दी जा सकती है। गुरुभक्ति का सहस्रार में ध्यान कर बाद में वहाँ गुरु को इष्ट में लीन करना चाहिए। श्रीरामकृष्ण बड़ी सुन्दर बात कहते थे, ''गुरु इष्ट को दिखाकर कहते हैं, ये तुम्हारे इष्ट हैं। फिर गुरु इष्ट में लीन हो जाते हैं।' गुरु इष्ट से अलग नहीं हैं। तत्त्व कितने हैं, यह मुँह से तुम्हें कैसे बतलाऊँ? साधना में लग जाओ। साधन-भजन करते-करते चित्त शुद्ध हो जाता है। तब जाने कितने अनुभव होते हैं, उसका कोई ठिकाना है? साधक तब उन अनुभवों को लेकर विभोर रहता है। साधन-भजन करने से हृदय आदि में ध्यान का स्थान कहाँ पर है, यह भी समझ में आ जाता है।

– स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

साधुओं के पावन प्रसंग (९१)

स्वामी श्रद्धानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

कभी-कभी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्यों के सम्बन्ध में बताया करते थे। उनके कुछ संस्मरण निम्नलिखित हैं। ये संस्मरण हमें यह बताते है कि श्रीरामकृष्ण और उनके शिष्यों के बीच क्या ही मधुर, सुन्दर और प्रेमिक सम्बन्ध था।

स्वामी रामकृष्णानन्द जी महाराज का संस्मरण

''श्रीरामकृष्ण उस समय काशीपुर उद्यानवाटी में कैंसर की चिकित्सा के लिए आए थे। उन दिनों शीतकाल का समय था। एक दिन की मध्यरात्रि की बात है। कमरा में किरोसीन लैम्प जल रहा था। गुरु श्रीरामकृष्ण की सेवा हेतु निद्रा-त्याग करके सेवक शशी महाराज (स्वामी रामकृष्णानन्द) बैठे हुए थे। ठाकुर के शौचालय का बर्तन साफ करने के लिए उस ठण्ड में शशी कमरे से बाहर गये। ठाकुर ने देखा कि शशी के शरीर पर वस्त्र के नाम पर केवल एक पतली धोती है। उस धोती के आधे भाग से शरीर का ऊपर का भाग तथा आधे भाग से शरीर का नीचे का भाग ढका हुआ है। जब शशी कमरे में आये, तब उन्होंने देखा कि बीमार ठाकुर किसी तरह बिछौना से उतरकर कमरे में रेंगते हुए दीवार पर टंगी हुए अपनी शाल के पास पहुँच रहे हैं।

''इस दृश्य को देखकर स्वामी रामकृष्णानन्द ने सोचा कि उनसे सेवापराध हुआ है। ठाकुर को ठण्ड लग रही है, यह उनको पहले समझ लेना चाहिए था। शशी ने प्रेमकोप करते हुए डाँटने के स्वर में ठाकुर से पूछा, ''यह आप क्या कर रहे हैं, इस समय कँपकँपी जैसी ठण्ड है, आपको बिछौना छोड़कर नहीं उठना चाहिए था?'' ठाकुर ने अपना शाल हाथ में लेकर प्रेम तथा करुणा से धीमे स्वर में कहा, ''मैं नहीं चाहता कि तुमको ठण्ड लगे। इसको ले लो।''

''क्या अपूर्व प्रेम है! हम जिसको प्रेम करते हैं, उसको अपनी प्रिय वस्तु ही देते हैं।

''स्वामी रामकृष्णानन्द जी महाराज परवर्ती काल में कहते हैं, ''ठाकुर के व्यवहृत शाल को ओढ़ने की योग्यता मुझमें नहीं है, ऐसा सोचकर मैंने वह शाल स्वामी ब्रह्मानन्द को दे दी थी।''

स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज की स्मृति

''१० दिसम्बर, १९३२ में स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज के शरीर-त्याग के कुछ ही दिनों बाद स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज प्रयागराज से अचानक बेलूड़ मठ पहुँचे। जब वे स्वामी शिवानन्द जी महाराज का दर्शन करने गये, तब महापुरुष महराज ने उनका हाथ पकड़कर रोते हुए कहा, 'विज्ञान स्वामी, खोका (सुबोधानन्द) चला गया, खोका चला गया।' विज्ञान महाराज भी अपनी भावना को रोक नहीं सके तथा उनकी आँखों से आँसू बहने लगे।

''विज्ञान महाराज प्रयागराज में कठोर तपस्यामय जीवन व्यतीत करते थे। जब वे बेलूड़ मठ आते, तब महापुरुष महाराज उनके लिए विशेष व्यंजन की व्यवस्था करते थे। वे अधिक मात्रा में भोजन कर सकते थे। मैं कुछ दिन पूर्व ही मठ में सम्मिलित हुआ था तथा तीन दिन तक उनकी सेवा करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ।

''एक दिन बैरिस्टर शैलेन बैनर्जी ने स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज को अपने घर पर रात्रिभोज के लिए आमंत्रित किया। वे विज्ञान महाराज को विशेष रूप से जानते थे। बैनर्जी-परिवार का बेलूड़ मठ के साथ मधुर सम्बन्ध था। १९९७ ई. में जब स्वामी विवेकानन्द दार्जिलिंग गये थे, तब वे शैलेन बैनर्जी के पिता एम.एन.बैनर्जी के मकान पर रुके थे। उनकी धर्मपत्नी ने स्वामी शिवानन्द जी महाराज से मन्त्र-दीक्षा ली थी।

''ऐसा निश्चय हुआ कि स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज

के साथ मैं और स्वामी सत्यात्मानन्द (शैलेन) सेवक के रूप में जायेंगे। विज्ञान महाराज ने पूर्व में ही सूचित कर दिया था कि उनका शरीर कुछ ठीक नहीं है। इसलिए वे केवल भात तथा झोल खायेंगे। शैलेन बाबू ने बेलूड़ मठ में गाड़ी भेजी तथा हम तीन लोग उनके घर गये। शैलेन बाबू ने विज्ञान महाराज का स्वागत किया। वे लोग विभिन्न विषयों पर वार्तालाप करने लगे। बातचीत के बीच में शैलेन बाबू ने कहा, ''महाराज, हमलोग ईश्वर को नहीं जानते। हमलोग इस संसार को, रुपया-पैसा, मकान इत्यादि इन्हीं सब को जानते हैं। इन सभी को छोड़कर ईश्वर हैं, इसका क्या प्रमाण है?'' विज्ञान महाराज ने शान्त भाव से सब सुना। तत्पश्चात् महाराज ने अपने हृदय पर हाथ रखकर कहा, 'आप जो कह रहे हैं, वह आपकी ओर से ठीक है। किन्तु मैंने अनुभव किया है कि इस दृश्यमान जगत् के पीछे एक चैतन्यमय सत्ता विराजमान है। मैंने अपनी आँखों से उसे देखा है।''

स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज

''विज्ञान महाराज के अनुभूतिमय बातों को सुनकर शैलेन बाबू स्तम्भित हो गये। तत्पश्चात् विनीत भाव से हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज, आपने ठीक ही कहा है।'

''तदनन्तर हमलोगों को भोजन हेतु बुलाया गया। उनलोगों ने महाराज को विभिन्न प्रकार का व्यंजन परोसा। उन्होंने सब खा लिया। तत्पश्चात् शैलेन बाबू ने कहा, आपने जो भात और झोल के लिए कहा था, वह भी तैयार है। तत्पश्चात् उन्होंने वह भी खा लिया। वह एक अद्भुत प्रीतिभोज था। रात्रिभोज के बाद हमलोग रात्रि में ही बेलूड़ मठ वापस आ गये। उसके दूसरे दिन महापुरुष महाराज ने मुझसे पूछा, ''रात्रिभोज कैसा हुआ?'' मैंने उनको आरम्भ से अन्त तक सब बता दिया। सब सुनकर वे बहुत आनन्दित हुए।

स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज का संस्मरण

''एक सन्ध्या स्वामी विवेकानन्द एकाग्रचित्त से एक पुस्तक का अध्ययन कर रहे थे। रात्रिभोज का घण्टा हुआ, किन्तु उनको सुनाई नहीं दिया। सभी लोग पंगत में उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, परन्तु किसी को उनके पास जाने का साहस नहीं हुआ। अन्त में, स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने खोका महाराज (स्वामी सुबोधानन्द) को स्वामीजी को बुलाने के लिए भेजा। वे स्वामीजी के कमरे में धीरे-धीरे शान्त कदमों से गये तथा पीछे से पुस्तक की पृष्ठ संख्या देखकर उसको बन्द कर दिया। स्वामीजी ने चौंककर कहा, 'साला

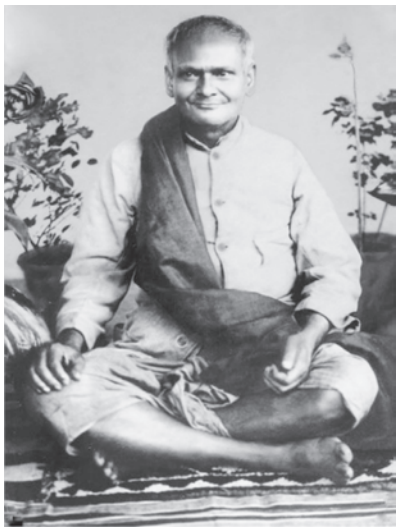
स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज

खोका, मेरी पुस्तक को क्यों बन्द कर दिया? मैं अब कैसे जान पाऊँगा कि मैं कहाँ पढ़ रहा था?'' खोका महाराज ने स्वामीजी के हाथ से पुस्तक लेकर उनको पृष्ठ संख्या दिखलाते हुए कहा, 'रात्रि प्रसाद का घण्टा बज गया है तथा प्रसाद ठण्डा हो रहा है। हम सब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'' स्वामीजी खोका महाराज के साथ अविलम्ब नीचे उतर आये तथा प्रसाद के लिए बैठ गये।

* * *

ये सब घटनाएँ हमको बताती हैं कि ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने कितने मधुरभाव से अपने शिष्यों को प्रेमबन्धन में बाँध दिया था।

स्वामी विरजानन्द जी महाराज

प्रत्येक वर्ष ग्रीष्म ऋतु के अवकाश में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के साथ मैं कुछ दिन सैक्रामेंटो में अति आनन्द से व्यतीत करता था। वे मुझे रविवार को व्याख्यान देने के लिए कहते थे। मैं बेलूड़ मठ, दक्षिणेश्वर, कामारपुकुर तथा जयरामवाटी को स्लाइड शो के माध्यम से भक्तों को दिखलाता था। दोपहर में, सन्त उद्यान में उनके साथ टहलने जाया करता था। एक दिन महाराज शिवगिरि की प्रदक्षिणा करने लगे तथा भगवान शिव के विभिन्न नामों का उच्चारण करने लगे : ॐ विश्वेश्वराय नमः, त्रयम्बकेश्वराय नमः, रामेश्वराय नमः, केदारेश्वराय नमः। भारत के प्रसिद्ध शिवलिंग को प्रणाम करने के पश्चात् महाराज ॐ ओल्मेश्वराय नमः, सैन फ्रैंसिस्केश्वराय नमः, सैंक्रामेन्टोश्वराय नमः।

स्वामी विरजानन्द जी महाराज के सचिव के रूप में कार्य करने के कारण श्रद्धानन्दजी मन्त्र-दीक्षा के विषय में बहुत कुछ जानते थे। मैंने उनसे मन्त्र-शास्त्र के विषय में बहुत कुछ सीखा था। रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य के बारे में महाराज बहुत विस्तृत रूप से जानते थे। एक दिन भक्ति के विषय में वार्तालाप करते समय उन्होंने निम्नलिखित घटना रघुनाथ गोस्वामी के विषय में बताई।

चैतन्य देव ने अपने शिष्य रघुनाथ गोस्वामी को एक गोवर्धन शिला दिया था। परवर्ती काल में रघुनाथ गोस्वामी उस शिला का नित्य पूजन किया करते थे। उनकी पूजा-विधि स्वतन्त्र थी। वे शिला को हाथ में लेकर अपने हृदय से लगाकर भगवान श्रीकृष्ण का चिन्तन किया करते थे। उस समय उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होते थे। एक हाथ से तुलसी दल को लेकर उसमें प्रेमाश्रु का जल लगाकर उसे गोवर्धन शिला पर चढ़ाया करते थे। यही उनकी पूजा थी। इसी को कहते हैं प्रेम की पूजा, प्राण की पूजा तथा हृदय की पूजा।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की तीन या चार दैनन्दिनी मेरे पास हैं। साधुओं के पावन-प्रसंग के द्वितीय भाग में मैंने उसमें से कुछ संस्मरण प्रकाशित किये हैं।

१९ जुलाई १९९९ को मैं स्वामी अशेषानन्द जी महाराज से मिलने के लिए पोर्टलैण्ड गया और तत्पश्चात् सैक्रामेंटो गया। जब मैं आश्रम पहुँचा, तब सीधे स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के कमरे में गया। मैंने जाकर कहा, ''महाराज, मैं चेतनानन्द।'' उनकी आँखें बन्द थीं, क्योंकि उनकी किडनी ने कार्य करना बन्द कर दिया था तथा वे अर्धचेतन अवस्था में थे। पन्द्रह मिनट तक वे मुझसे वार्तालाप करने का प्रयास करते रहे, किन्तु एक शब्द भी नहीं बोल पाये। बीच-बीच में वे केवल 'माँ, माँ' उच्चारित कर रहे थे। उन्होंने बँगला में जल माँगा। महाराज को जल देने के लिए मैंने नर्स से कहा। थोड़ा जल पीने के बाद वे शान्त ही

रहे कुछ बोले नहीं। इसलिए मैं स्वामी प्रपन्नानन्द के साथ कमरे से बाहर आ गया। इसके कुछ समय बाद ही नर्स ने बाहर आकर कहा कि श्रद्धानन्द जी महाराज मुझे बुला रहे हैं। पुन: मैं उनके पास गया तथा उनसे कुछ प्रश्न पूछे। वे बोलने का प्रयास कर रहे थे, किन्तु बोल नहीं पाये। तुरन्त ही उन्होंने आँखें बन्द कर लीं तथा मैं कमरे से बाहर आ गया। रात्रि के ८.३० बजे हमलोग प्रसाद के लिए बैठे हुए थे। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी आनन्द ने आकर हमें सूचित किया कि ८.४५ बजे स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने अपना पञ्चभौतिक शरीर त्याग कर दिया है। हमलोग तत्क्षण उनके कमरे में गये तथा 'हरि ॐ रामकृष्ण' का गायन किया।

उसके अगले दिन हमने उनके शरीर को गेरुआ वस्त्र,

स्वामी श्रद्धानन्द और स्वामी अशोकानन्द जी महाराज

फूल, माला आदि से सजाया। श्रद्धांजलि देने के लिए अनेक भक्त आये थे। महाराज ने अपने लिए पहले से ही लकड़ी की ताबूत की व्यवस्था कर दी थी। उनके ताबूत को कौन कन्धा देगा, कौन-सा स्तोत्र गाया जायेगा, कौन-सा भजन-कीर्तन किया जायेगा इत्यादि का उन्होंने स्पष्ट निर्देश दिया था। हमने उनकी एक इच्छा की उपेक्षा की थी। उनकी इच्छा थी कि केवल सैक्रामेंटो, सैनफ्रांसिस्को तथा बर्कली केन्द्र के संन्यासी ही उनके अन्तिम संस्कार में सम्मिलित हों। हालाँकि ४ अगस्त, १९९६ ई. को अमेरिका के विभिन्न केन्द्रों के ७ या ८ संन्यासी तथा लगभग २५० भक्त उनकी श्रद्धांजलि सभा में सम्मिलित हुए थे।

मृत्यु का भय मनुष्य में जन्मजात होता है। एक ज्ञानी-संन्यासी जानता है कि आत्मा अजर, अमर, अविनाशी तथा अभय है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी दैनन्दिनी में लिखा था, 'वृक्ष को इस बात की चिन्ता नहीं होती कि उसका पत्ता आंगन, मार्ग या पवित्र स्थान कहाँ गिर रहा है; उसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति का शरीर कहाँ, किस तरह छूट रहा है, उसके लिए कुछ भी महत्त्व नहीं होता।' उनकी इच्छा को देखते हुए ऐसा लगता है कि वे अपनी मृत्यु की तैयारी तथा उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। माया की बेड़ी से मुक्त हुए एक संन्यासी का यह संकेत है।

जब हमारे संघ के किसी संन्यासी की मृत्यु होती है, तब संघ-मुख्यालय बेलूड़ मठ से प्रकाशित बूलेटिन में उनकी जीवनी तथा संघ में उनके योगदान को संक्षेप में वर्णित किया जाता है। स्वामी श्रद्धानन्द तथा अनेक संन्यासियों ने संघ रूपी श्रीरामकृष्ण की सेवा अनुराग के साथ की है, परन्तु उनको लिखा नहीं गया है।

एक भक्त ने किसी एक संन्यासी से पूछा, ''महाराज, संन्यासी होकर आपने अपने जीवन में क्या पाया?''

संन्यासी ने उत्तर दिया, ''मैंने अपने सम्पूर्ण मन-प्राण से रामकृष्ण की सेवा पिछले ५० वर्षों से की है तथा शान्ति और आनन्द प्राप्त किया है।'' जिसने अपने जीवन में शान्ति तथा आनन्द की प्राप्ति की है, वही दूसरे के जीवन में शान्ति तथा आनन्द ला सकता है।

एक संन्यासी के लिए उसका जीवन ही उसकी सच्ची सम्पत्ति है; नहीं तो अन्य कोई व्यक्ति भी प्रवचन दे सकता है, पुस्तकें लिख सकता है तथा मन्दिर बनवा सकता है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने अपनी दैनन्दिनी में एक स्वार्थी तपस्वी के विषय में लिखा था, ''यदि तुम कौआ के नवजात बच्चे को पकड़ने का प्रयास करते हो, तो सैकड़ों कौए तुम पर प्रहार करने आ जायेंगे। यदि एक चींटी मरती है, तो सैकड़ों चींटियाँ उसको ले जाने के लिए आ जाती हैं। इन जानवरों के अन्दर कुछ आत्मीयता होती है। लेकिन एक तपस्वी क्या करता है? वह कहता है, संसार में क्या हो रहा है, उससे मुझे कोई मतलब नहीं। मैं अपनी गुफा में रहूँगा और अपनी मुक्ति के लिए प्रयास करूँगा। भक्तगण मुझे भिक्षा दें।''

इससे यह प्रमाणित होता है कि स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज अपने जीवन को दूसरों के लिए जीने में विश्वास करते थे। एक संन्यासी के रूप में, एक ओर जैसे वे शिक्षित तथा दक्ष थे तथा दूसरी ओर प्रेमिक एवं नि:स्वार्थी थे। **(क्रमश:)**

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में भक्त-सम्मेलन और अन्तर्जिला युवा-सम्मेलन का आयोजन हुआ

१ मार्च, २०२६ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में भक्त सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें भक्तों को गीता-पाठ, श्रीरामकृष्णाष्टोत्तर शतनामार्चना, जप-ध्यान कराया गया। तत्पश्चात् आश्रम के सचिव स्वामी योगस्थानन्द, रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल के सचिव स्वामी नित्यज्ञानानन्द जी और स्वामी देवभावानन्द जी ने प्रवचन दिये। प्रश्नोत्तरोपरान्त रामकृष्णशरणम् से सम्मेलन समाप्त हुआ।

अन्तर्जिला युवा-सम्मेलन

१४ मार्च, २०२६ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में अन्तर्जिला युवा महोत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें रायपुर, भिलाई, दुर्ग, गरियाबन्द, खैरागढ़, राजनाँदगाँव, सारंगगढ़ और बेमेतरा आठ जिलों के २७५ छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। स्वामी देवभावानन्द जी और स्वामी धर्मपालानन्द जी के वेद-मन्त्र-पाठ और अतिथियों द्वारा दीप-प्रज्वलनोपरान्त आश्रम-छात्रावास के छात्रों ने 'मनुष्य तू बड़ा महान है' प्रेरक गीत गाया। उसके बाद आश्रम के सचिव स्वामी योगस्थानन्द जी ने सभी आगन्तुक छात्रों और अध्यापकों का स्वागत किया। तत्पश्चात् स्वामी प्रपत्त्यानन्द, रविशंकर विश्वविद्यालय के विधि विभागाध्यक्ष डॉ. राजीव चौधरी, शासकीय कचना धुर्वा महाविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. विनीत साहू, रामकृष्ण मठ, नागपुर से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'जीवन विकास' के सम्पादक स्वामी ज्ञानगम्यानन्द और स्वामी योगस्थानन्द जी ने छात्र-छात्राओं को विभिन्न विषयों पर सम्बोधित किया। प्रश्नोत्तर काल में छात्रों की जिज्ञासाओं का समाधान किया गया। तत्पश्चात् अतिथियों को उपहार दिया गया। स्वामी धर्मपालानन्द जी ने धन्यवाद ज्ञापन किया। अन्त में राष्ट्रगान से कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। सभी प्रतिभागियों को सहभागिता प्रमाण पत्र दिया गया। सुस्वादु भोजन से सम्मेलन समाप्त हुआ। संचालन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।

रामकृष्ण मिशन, मोराबादी, राँची में भक्त-सम्मेलन

८ मार्च, २०२६ को रामकृष्ण मिशन, मोराबादी, राँची में भक्त सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें २२० भक्तों ने भाग लिया। आश्रम के सचिव स्वामी भवेशानन्द जी ने भक्तों को जप-ध्यान कराया और साधना में मन की एकाग्रता को समझाया। उसके बाद स्वामी अन्तरानन्द जी ने धर्म का मूल नैतिकता और चरित्र-निर्माण के सम्बन्ध में बताया। तत्पश्चात् रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने पुरुषार्थचतुष्टय पर व्याख्यान दिया। प्रश्नोत्तर और भजन-संगीत से सम्मेलन समाप्त हुआ।

९ मार्च, २०२६ को रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची द्वारा बँधुवाडिह, अनगड़ा ग्राम में संचालित गदाधर अभ्युदय प्रकल्प और अखण्डानन्द शिक्षा संस्थान में कार्यक्रम हुआ, जिसमें बच्चों के साथ-साथ सभी ग्रामवासियों ने भाग लिया। बच्चों ने विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये। ग्रामवासियों ने सभी समागत अतिथियों का भव्य तोरण द्वार बनाकर और पारम्परिक टोपी और माला पहनाकर स्वागत किया। सभा को स्वामी भवेशानन्द जी, स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी, स्वामी भक्तीशानन्द जी ने सम्बोधित किया। इसके अतिरिक्त कलकत्ता और हजारीबाग से आये भक्तवृन्द, धनबाद से रामकृष्ण विवेकानन्द स्वाध्याय ट्रस्ट के सचिव श्री बिकेश कुमार सिंह, राँची से अविनाश पाठक, प्रियंका पाठक आदि ने भाग लिया। बच्चों और अभिभावकों सहित कुल २०० ग्रामवासी उपस्थित थे।